सज्जनता का दंड

मुंशी प्रेमचंद

कथाक्रम

सज्जनता का दंड
नमक का दारोगा
उद्धार
मुक्तिधन
बहिष्कार
चोरी
कजाकी
सभ्यता का रहस्य
समस्या
रियासत का दीवान
आंसुओं की होली
मुबारक बीमारी
घासवाली
अभिलाषा
भूत
कप्तान साहब
लागडाट

सज्जनता का दंड

साधारण मनुष्य की तरह शाहजहांपुर के डिस्ट्रिक्ट इंजीनियर सरदार शिव सिंह में भी भलाइयां और बुराइयां दोनों ही वर्तमान थीं. भलाई यह थी कि उन के यहां न्याय और दया में कोई अंतर न था. बुराई यह थी कि वह सर्वथा निर्लोभ और निःस्वार्थ थे. भलाई ने मातहतों को निडर और आलसी बना दिया था, बुराई के कारण उस विभाग के सभी अधिकारी उन की जान के दुश्मन बन गए थे.

प्रातःकाल का समय था. वह किसी पुल की निगरानी के लिए तैयार खड़े थे. मगर साईस अभी तक मीठी नींद ले रहा था. रात को उसे अच्छी तरह सहेज दिया था कि पौ फटने के पहले गाड़ी तैयार कर लेना. लेकिन सुबह भी हुई, सूर्य भगवान ने दर्शन भी दिए, शीतल किरणों में गरमी भी आई, पर साईस की नींद अभी तक नहीं टूटी.

सरदार साहब खड़ेखड़े थक कर एक कुरसी पर बैठ गए. साईस तो किसी तरह जागा, परंतु चपरासियों का पता नहीं. जो महाशय डाक लेने गए थे वह एक ठाकुरद्वारा में खड़े चरणामृत की परीक्षा कर रहे थे. जो ठेकेदार को बुलाने गए थे वह बाबा रामदास की सेवा में बैठे गांजे का दम लगा रहे थे.

धूप तेज होती जाती थी. सरदार साहब झुंझला कर मकान में चले गए और अपनी पत्नी से बोले, 'इतना दिन चढ़ आया, अभी तक एक चपरासी का भी पता नहीं. इन के मारे तो मेरे नाक में दम आ गया है.'

पत्नी ने दीवार की ओर देख कर कहा, 'यह सब उन्हें सिर चढ़ाने का फल है.'

सरदार साहब चिढ़ कर बोले, 'क्या करूं, उन्हें फांसी दे दूं?'

2

सरदार साहब के पास मोटरकार का तो कहना ही क्या, कोई फिटिन भी न थी. वह अपने इक्के से ही प्रसन्न थे, जिसे उन के नौकरचाकर अपनी भाषा में उड़नखटोला कहते थे. शहर के लोग उसे इतना आदरसूचक नाम न दे कर छकड़ा कहना ही उचित समझते थे. इस तरह सरदार साहब अन्य व्यवहारों में भी बड़े मितव्ययी थे.

उन के दो भाई इलाहाबाद में पढ़ते थे. विधवा माता बनारस में रहती थीं. एक विधवा बहिन भी उन्हीं पर अवलंबित थी. इन के सिवा कई गरीब लड़कों को छात्रवृत्तियां भी देते थे. इन्हीं कारणों से वह सदा खाली हाथ रहते! यहां तक कि उन के कपड़ों पर भी उस आर्थिक दशा के चिह्न दिखाई देते थे. लेकिन ये सब कष्ट सह कर भी वह लोभ को

अपने पास फटकने न देते थे!

जिन लोगों पर उन का स्नेह था वे उन की सज्जनता को सराहते थे और उन्हें देवता समझते थे. उन की सज्जनता से उन्हें कोई हानि न होती थी, लेकिन जिन लोगों से उन के व्यावसायिक संबंध थे वे उन के सद्भावों के ग्राहक न थे, क्योंकि उन्हें हानि होती थी. यहां तक कि उन्हें अपनी सहधर्मिणी से भी कभीकभी अप्रिय बातें सुननी पड़ती थीं.

एक दिन वह दफ्तर से आए तो उन की पत्नी ने स्नेहपूर्ण ढंग से कहा, 'तुम्हारी यह सज्जनता किस काम की, जब सारा संसार तुम को बुरा कह रहा है.'

सरदार साहब ने दृढ़ता से जवाब दिया, 'संसार जो चाहे कहे परमात्मा तो देखता है.'

रामा ने यह जवाब पहले ही सोच लिया. वह बोली, 'तुम से विवाद तो करती नहीं, मगर जरा अपने दिल में विचार कर के देखो कि तुम्हारी इस सच्चाई का दूसरों पर क्या असर पड़ता है? तुम तो अच्छा वेतन पाते हो. तुम अगर हाथ न बढ़ाओ तो तुम्हारा निर्वाह हो सकता है? रूखी रोटियां मिल ही जाएंगी मगर ये दसदस पांचपांच रुपए के चपरासी, मुहर्रिर, दफ्तरी बेचारे कैसे गुजर करें. उन के भी बालबच्चे हैं. उन के कुटुंबपरिवार हैं. शादीगमी, तिथित्योहार यह सब उन के पास लगे हुए हैं. भलमनसी का भेष बनाए काम नहीं चलता. बताओ उन का गुजर कैसे हो? अभी रामदीन चपरासी की घरवाली आई थी. रोतेरोते आंचल भीगता था. लड़की सयानी हो गई है. अब उस का ब्याह करना पड़ेगा. ब्राह्मण की जाति—हजारों का खर्च. बताओ उस के आंसू किस के सिर पड़ेंगे?'

ये सब बातें सच थीं. उन से सरदार साहब को इनकार नहीं हो सकता था. उन्होंने स्वयं इस विषय में बहुत कुछ विचार किया था. यही कारण था कि वह अपने मातहतों के साथ बड़ी नरमी का व्यवहार करते थे. लेकिन सरलता और शालीनता का आत्मिक गौरव चाहे जो हो, उन का आर्थिक मोल बहुत कम है. वह बोले, 'तुम्हारी बातें सब यथार्थ हैं, किंतु मैं विवश हूं. अपने नियमों को कैसे तोड़ूं? यदि मेरा वश चले तो मैं उन लोगों का वेतन बढ़ा दूं. लेकिन यह नहीं हो सकता कि मैं खुद लूट मचाऊं और उन्हें लूटने दूं.'

रामा ने व्यंग्यपूर्ण शब्दों में कहा, 'तो यह हत्या किस पर पड़ेगी?'

सरदार साहब ने तीव्र हो कर उत्तर दिया, 'यह उन लोगों पर पड़ेगी जो अपनी हैसियत और आमदनी से अधिक खर्च करना चाहते हैं. अरदली बन कर क्यों वकील के लड़के से लड़की ब्याहने को ठानते हैं. दफ्तरी को यदि टहलुवे की जरूरत हो तो यह किसी पाप कार्य से कम नहीं. मेरे साईस की स्त्री अगर चांदी की सिल गले में डालना चाहे तो यह उस की मूर्खता है. इस झूठी बड़ाई का उत्तरदाता मैं नहीं हो सकता.'

3

इंजीनियरों का ठेकेदारों से कुछ ऐसा ही संबंध है जैसे मधुमक्खियों का फूलों से. अगर वे अपने नियत भाग से अधिक पाने की चेष्टा न करें तो उन से किसी को शिकायत नहीं हो सकती. यह मधु रस कमीशन कहलाता है. रिश्वत लोक और परलोक दोनों का ही सर्वनाश कर देती है. उस में भय है, चोरी है, बदमाशी है. मगर कमीशन एक मनोहर वाटिका है, जहां न मनुष्य का डर है, न परमात्मा का भय, यहां तक कि वहां आत्मा की छिपी हुई चुटकियों का भी गुजर नहीं है. और कहां तक कहें उस की ओर बदनामी आंख भी नहीं उठा

सकती. यह वह बलिदान है जो हत्या होते हुए भी धर्म का एक अंश है.

ऐसी अवस्था में यदि सरदार शिवसिंह अपने उज्ज्वल चरित्र को इस धब्बे से साफ रखते थे और उस पर अभिमान करते थे तो क्षमा के पात्र थे.

मार्च का महीना बीत रहा था. चीफ इंजीनियर साहब जिले में मुआयना करने आ रहे थे. मगर अभी तक इमारतों का काम अपूर्ण था. सड़कें खराब हो रही थीं, ठेकेदारों ने मिट्टी और कंकड़ भी नहीं जमा किए थे.

सरदार साहब रोज ठेकेदारों को ताकीद करते थे, मगर इस का कुछ फल न होता था.

एक दिन उन्होंने सब को बुलाया. वह कहने लगे, "तुम लोग क्या यही चाहते हो कि मैं जिले से बदनाम हो कर जाऊं. मैं ने तुम्हारे साथ कोई बुरा सलूक नहीं किया. मैं चाहता तो आप से काम छीन कर खुद करा लेता, मगर मैं ने आप को हानि पहुंचाना उचित न समझा. उस की मुझे यह सजा मिल रही है. खैर!"

ठेकेदार लोग यहां से चले तो बातें होने लगीं. मिस्टर गोपाल दास बोले, "अब आटेदाल का भाव मालूम हो जाएगा."

शाहबाज खां ने कहा, "किसी तरह इस का जनाजा निकले तो यहां से...."

सेठ चुन्नीलाल ने फरमाया, "इंजीनियर से मेरी जानपहचान है, मैं उन के साथ काम कर चुका हूं. वह उन्हें खूब लथेड़ेगा."

इस पर बूढ़े हरिदास ने उपदेश दिया, "यारो, स्वार्थ की बात है. नहीं तो सच यह है कि यह मनुष्य नहीं, देवता है. भला और नहीं तो साल भर में कमीशन के 10 हजार तो होते होंगे. इतने रुपयों को ठीकरे की तरह तुच्छ समझना क्या कोई सहज बात है? एक हम हैं कि कौड़ियों के पीछे ईमान बेचते फिरते हैं. जो सज्जन पुरुष हम से एक पाई का रवादार न हो, सब प्रकार के कष्ट उठा कर भी जिस की नीयत डावांडोल न हो, उस के साथ ऐसा नीच और कुटिल बरताव करना पड़ता है. इसे अपने अभाग्य के सिवा और क्या समझें."

शाहबाज खां ने फरमाया—हां; इस में तो कोई शक नहीं कि यह शख्स नेकी का फरिश्ता है.

सेठ चुन्नीलाल ने गंभीरता से कहा, "खां साहब! बात तो वही है, जो तुम कहते हो. लेकिन किया क्या जाए? नेकनीयती से तो काम नहीं चलता. यह दुनिया तो छलकपट की है."

मिस्टर गोपालदास बी. ए. पास थे. वह गर्व के साथ बोले, "इन्हें जब इस तरह रहना था तो नौकरी करने की क्या जरूरत थी? यह कौन नहीं जानता की नीयत को साफ रखना अच्छी बात है. मगर यह भी तो देखना चाहिए कि इस का दूसरों पर क्या असर पड़ता है. हम को तो ऐसा आदमी चाहिए जो खुद खाए और हमें भी खिलाए. खुद हलुवा खाए, हमें रूखी रोटियां ही खिलाए. वह अगर एक रुपया महीना कमीशन लेगा तो उस की जगह पांच का फायदा कर देगा. इन महाशय के यहां क्या है? इसलिए आप जो चाहें कहें, मेरी तो कभी इन से निभ नहीं सकती."

शाहबाज खां बोले, "हां, नेक और पाकसाफ रहना जरूर अच्छी चीज है, मगर ऐसी नेकी ही से क्या जो दूसरों की जान ले ले."

बूढ़े हरिदास की बातों की जिन लोगों ने पुष्टि की थी वे सब गोपालदास की 'हां' में

‘हां’ मिलाने लगे! निर्बल आत्माओं में सच्चाई का प्रकाश जुगनू की चमक है.

4

सरदार साहब के एक पुत्री थी. उस का विवाह मेरठ के एक वकील के लड़के से ठहरा था. लड़का होनहार था. जाति कुल का ऊंचा था. सरदार साहब ने कई महीने की दौड़धूप में इस विवाह को तय किया था. और सब बातें तय हो चुकी थीं, केवल दहेज का निर्णय नहीं हुआ था.

आज वकील साहब का एक पत्र आया. उस ने इस बात का भी निश्चय कर दिया, मगर विश्वास, आशा और वचन के बिलकुल प्रतिकूल. पहले वकील साहब ने एक जिले के इंजीनियर के साथ किसी प्रकार का ठहराव व्यर्थ समझा. बड़ी सस्ती उदारता प्रकट की. इस लज्जित और घृणित व्यवहार पर खूब आंसू बहाए. मगर जब ज्यादा पूछताछ करने पर सरदार साहब के धनवैभव का भेद खुल गया तब दहेज का ठहराना आवश्यक हो गया.

सरदार साहब ने आशंकित हाथों से पत्र खोला, पांच हजार रुपए से कम पर विवाह नहीं हो सकता. वकील साहब को बहुत खेद और लज्जा थी कि वह इस विषय में स्पष्ट होने पर मजबूर किए गए. मगर वह अपने खानदान के कई बूढ़े खुर्राट, विचारहीन, स्वार्थांध महात्माओं के हाथों बहुत तंग थे. उन का कोई वश न था. इंजीनियर साहब ने एक लंबी सांस खींची सारी आशाएं मिट्टी में मिल गईं. क्या सोचते थे, क्या हो गया. विकल हो कर कमरे में टहलने लगे.

उन्होंने जरा देर पीछे पत्र को उठा लिया और अंदर चले गए. विचारा कि यह पत्र रामा को सुनाएं, मगर फिर खयाल आया कि यहां सहानुभूति की कोई आशा नहीं. क्यों अपनी निर्बलता दिखाऊं? क्यों मूर्ख बनूं? वह बिना बातों के बात न करेगी. यह सोच कर वह आंगन से लौट गए.

सरदार साहब स्वभाव के बड़े दयालु थे और कोमल हृदय आपत्तियों में स्थिर नहीं रह सकता. वह दुख और ग्लानि से भरे हुए सोच रहे थे कि मैं ने ऐसे कौन से बुरे काम किए हैं जिन का मुझे यह फल मिल रहा है.

बरसों की दौड़धूप के बाद जो कार्य सिद्ध हुआ था वह क्षण मात्र में नष्ट हो गया. अब वह मेरी सामर्थ्य से बाहर है. मैं उसे नहीं संभाल सकता. चारों ओर अंधकार है. कहीं आशा का प्रकाश नहीं. कोई मेरा सहायक नहीं. उन के नेत्र सजल हो गए.

सामने मेज पर ठेकेदारों के बिल रखे हुए थे. वे कई सप्ताहों से यों ही पड़े थे. सरदार ने उन्हें खोल कर भी न देखा था. आज इस आत्मिक ग्लानि और नैराश्य की अवस्था में उन्होंने इन बिलों को सतृष्ण आंखों से देखा. जरा से इशारे पर ये सारी कठिनाइयां दूर हो सकती हैं.

चपरासी और क्लर्क केवल मेरी सम्मति के सहारे सब कुछ कर लेंगे. मुझे जबान हिलाने की भी जरूरत नहीं. न मुझे लज्जित ही होना पड़ेगा. इन विचारों का इतना प्राबल्य हुआ कि वह वास्तव में बिलों को उठा कर गौर से देखने और हिसाब लगाने लगे कि उन में कितनी निकासी हो सकती है.

मगर शीघ्र ही आत्मा ने उन्हें जगा दिया—आह! मैं किस भ्रम में पड़ा हुआ हूं? क्या

इस आत्मिक पवित्रता को, जो मेरी जन्म भर की कमाई है, केवल थोड़े से धन पर अर्पण कर दूं? जो मैं अपने सहकारियों के सामने गर्व से सिर उठाए चलता था, जिस से मोटरकार वाले भ्रातृगण आंखें नहीं मिला सकते थे, वहीं मैं आज अपने उस सारे गौरव और मान को, अपनी संपूर्ण आत्मिक संपत्ति को दसपांच हजार रुपयों पर त्याग दूं. ऐसा कदापि नहीं हो सकता.

अब उस कुविचार को परास्त करने के लिए, जिस ने क्षणमात्र के लिए उन पर विजय पा ली थी, वह उस सुनसान कमरे में जोर से ठठा कर हंसे. चाहे यह हंसी उन बिलों ने और कमरे की दीवारों ने न सुनी हो, मगर उन की आत्मा ने अवश्य सुनी. उस आत्मा को एक कठिन परीक्षा में पार पाने पर परम आनंद हुआ.

सरदार साहब ने उन बिलों को उठा कर मेज के नीचे डाल दिया. फिर उन्हें पैरों से कुचला. तब इस विजय पर मुसकराते हुए वह अंदर गए.

5

बड़े इंजीनियर साहब नियत समय पर शाहजहांपुर आए. उस के साथ सरदार साहब का दुर्भाग्य भी आया. जिले के सारे काम अधूरे पड़े हुए थे.

उन के खानसामा ने कहा; ‘हुजूर! काम कैसे पूरा हो? सरदार साहब ठेकेदारों को बहुत तंग करते हैं.’

हेडक्लर्क ने दफ्तर के हिसाब को भ्रम और भूलों से भरा हुआ पाया.

उन्हें सरदार साहब की तरफ से न कोई दावत दी गई न कोई भेंट. तो क्या वे सरदार साहब के नातेदार थे जो गलतियां न निकालते.

जिले के ठेकेदारों ने एक बहुमूल्य डाली सजाई और उसे बड़े इंजीनियर साहब की सेवा में ले कर हाजिर हुए. वह बोले, ‘हुजूर! चाहे गुलामों को गोली मार दें, मगर सरदार साहब का अन्याय अब नहीं सहा जाता. कहने को तो कमीशन नहीं लेते मगर सच पूछिए तो जान ले लेते हैं.’

चीफ इंजीनियर साहब ने मुआइने की किताब में लिखा, “सरदार शिवसिंह बहुत ईमानदार आदमी हैं. उन का चरित उज्ज्वल है, मगर वह इतने बड़े जिले के कार्य का भार नहीं संभाल सकते.”

परिणाम यह हुआ कि वह एक छोटे से जिले में भेज दिए गए और उन का दरजा भी घटा दिया गया.

सरदार साहब के मित्रों और स्नेहियों ने बड़े समारोह से एक जलसा किया. उस में उन की धर्मनिष्ठा और स्वतंत्रता की प्रशंसा की. सभापति ने सजल नेत्र हो कर कंपित स्वर में कहा, ‘सरदार साहब के वियोग का दुख हमारे दिल में सदा खटकता रहेगा. यह घाव कभी न भरेगा.’

मगर ‘फेयरवेल डिनर’ में यह बात सिद्ध हो गई कि स्वादिष्ट पदार्थों के सामने वियोग का दुख दुस्सह नहीं.

यात्रा के सामान तैयार थे. सरदार साहब जलसे से आए तो रामा ने उन्हें बहुत उदास और मलिन मुख देखा. उस ने बारबार कहा था कि बड़े इंजीनियर के खानसामा को इनाम

दो, हेड क्लर्क की दावत करो; मगर सरदार साहब ने उस की बात न मानी थी. इसलिए जब उस ने सुना कि उन का दरजा घटा और बदली भी हुई तब उस ने बड़ी निर्दयता से अपने व्यंग्यबाण चलाए. मगर इस वक्त उन्हें उदास देख कर उस से न रहा गया. बोली, 'क्यों इतने उदास हो?'

सरदार साहब ने उत्तर दिया, 'क्या करूं, हंसूं?'

रामा ने गंभीर स्वर से कहा, 'हंसना ही चाहिए. रोए तो वह जिस ने कौड़ियों पर अपनी आत्मा भ्रष्ट की हो—जिस ने रुपयों पर अपना धर्म बेचा हो. यह बुराई का दंड नहीं है. यह भलाई और सज्जनता का दंड है, इसे सानंद झेलना चाहिए.'

यह कह उस ने पति की ओर देखा तो नेत्रों में सच्चा अनुराग भरा हुआ दिखाई दिया. सरदार साहब ने भी उस की ओर स्नेहपूर्ण दृष्टि से देखा. उन की हृदयेश्वरी का मुखारविंद सच्चे आमोद से विकसित था.

उसे गले लगा कर वह बोले, 'रामा! मुझे तुम्हारी ही सहानुभूति की जरूरत थी, अब मैं इस दंड को सहर्ष सहूंगा.'

नमक का दारोगा

जब नमक का नया विभाग बना और ईश्वरप्रदत्त वस्तु के व्यवहार करने का निषेध हो गया तो लोग चोरीछिपे इस का व्यापार करने लगे. अनेक प्रकार के छलप्रपंचों का सूत्रपात हुआ, कोई घूस से काम निकालता था, कोई चालाकी से. अधिकारियों के पौबारह थे. पटवारीगिरी का सर्वसम्मानित पद छोड़छोड़ कर लोग इस विभाग की बरकंदाजी करते थे. इस के दारोगा पद के लिए तो वकीलों का भी जी ललचाता था.

यह वह समय था जब अंगरेजी शिक्षा और ईसाई मत को लोग एक ही वस्तु समझते थे. फारसी का प्राबल्य था. प्रेम की कथाएं और शृंगार रस के काव्य पढ़ कर फारसी दां लोग सर्वोच्च पदों पर नियुक्त हो जाया करते थे.

मुंशी वंशीधर भी जुलेखा की विरहकथा समाप्त कर के मजनू और फरहाद के प्रेमवृत्तांत को नल और नील की लड़ाई और अमेरिका के आविष्कार से अधिक महत्त्व की बातें समझते हुए रोजगार की खोज में निकले.

उन के पिता एक अनुभवी पुरुष थे. समझाने लगे, 'बेटा! घर की दुर्दशा देख रहे हो. ऋण के बोझ से दबे हुए हैं. लड़कियां हैं, वे घासफूस की तरह बढ़ती चली जाती हैं. मैं कगारे पर का वृक्ष हो रहा हूं, न मालूम कब गिर पड़े! अब तुम्हीं घर के मालिक मुख्तार हो. नौकरी में ओहदे की ओर ध्यान मत देना. यह पीर का मजार है. निगाह चढ़ावे और चादर पर होनी चाहिए. ऐसा काम ढूंढना जहां कुछ ऊपरी आय हो. मासिक वेतन तो पूर्णमासी का चांद है, जो एक दिन दिखाई देता है और घटतेघटते लुप्त हो जाता है.

—ऊपरी आय बहता हुआ स्रोत है जिस से सदैव प्यास बुझती है. वेतन मनुष्य देता है, इसी से उस में वृद्धि नहीं होती. ऊपरी आमदनी ईश्वर देता है, इसी से उस की बरकत होती है, तुम स्वयं विद्वान हो, तुम्हें क्या समझाऊं. इस विषय में विवेक की बड़ी आवश्यकता है.

—मनुष्य को देखो, उस की आवश्यकता को देखो और अवसर देखो, उस के उपरांत जो उचित समझो, करो. गरजवाले आदमी के साथ कठोरता करने में लाभ ही लाभ है. लेकिन बेगरज को दांव पर पाना जरा कठिन है. इन बातों को निगाह में बांध लो. यह मेरी जन्म भर की कमाई है.'

इस उपदेश के बाद पिता जी ने आशीर्वाद दिया. वंशीधर आज्ञाकारी पुत्र थे. ये बातें ध्यान से सुनीं और तब घर से चल खड़े हुए. इस विस्तृत संसार में उन के लिए धैर्य अपना मित्र, बुद्धि अपनी पथप्रदर्शक और आत्मावलंबन ही अपना सहायक था. लेकिन अच्छे शकुन से चले थे, जाते ही जाते नमक विभाग के दारोगा पद पर प्रतिष्ठित हो गए. वेतन

अच्छा और ऊपरी आय का तो ठिकाना ही न था.

वृद्ध मुंशी जी को सुख संवाद मिला तो फूले न समाए. महाजन कुछ नरम पड़े, कलवार की आशालता लहलहाई. पड़ोसियों के हृदय में शूल उठने लगे.

2

जाड़े के दिन थे और रात का समय था. नमक के सिपाही, चौकीदार नशे में मस्त थे. मुंशी वंशीधर को यहां आए अभी छह महीनों से अधिक न हुए थे, लेकिन इस थोड़े समय में ही उन्होंने अपनी कार्यकुशलता और उत्तम आचार से अफसरों को मोहित कर लिया था. अफसर लोग उन का बहुत विश्वास करने लगे.

नमक के दफ्तर से एक मील पूर्व की ओर जमुना बहती थी, उस पर नावों का एक पुल बना हुआ था. दारोगा जी किवाड़ बंद किए मीठी नींद से सो रहे थे.

अचानक आंख खुली तो नदी के प्रवाह की जगह गाड़ियों की गड़गड़ाहट तथा मल्लाहों का कोलाहल सुनाई दिया. उठ बैठे. इतनी रात गए गाड़ियां क्यों नदी के पार जाती हैं? अवश्य कुछ न कुछ गोलमाल है. तर्क ने भ्रम को पुष्ट किया. वरदी पहनी, तमंचा जेब में रखा और बात की बात में घोड़ा बढ़ाए हुए पुल पर आ पहुंचे.

गाड़ियों की एक लंबी कतार पुल के पार जाती देखी. डांट कर पूछा, 'किस की गाड़ियां हैं.'

थोड़ी देर तक सन्नाटा रहा. आदमियों में कुछ कानाफूसी हुई, तब आगे वाले ने कहा —पंडित अलोपीदीन की.

'कौन पंडित अलोपीदीन!'

'दातागंज के.'

मुंशी वंशीधर चौंके. पंडित अलोपीदीन इस इलाके के सब से प्रतिष्ठित जमींदार थे. लाखों रुपए का लेनदेन करते थे, इधर छोटे से बड़े कौन ऐसे थे, जो उन के ऋणी न हों. व्यापार बड़ा लंबाचौड़ा था. बड़े चलतेपुरजे आदमी थे. अंगरेज अफसर उन के इलाके में शिकार खेलने आते और उन के मेहमान होते. बारहों मास सदाव्रत चलता था.

मुंशी जी ने पूछा, 'गाड़ियां कहां जाएंगी?'

उत्तर मिला, 'कानपुर.'

लेकिन इस प्रश्न पर कि इन में क्या है, सन्नाटा छा गया.

दारोगा साहब का संदेह और भी बढ़ा. कुछ देर तक उत्तर की बाट देख कर वह जोर से बोले, 'क्या गूंगे हो गए हो? हम पूछते हैं, इन में क्या लदा है?'

जब इस बार भी कोई उत्तर न मिला तो उन्होंने घोड़े को एक गाड़ी से मिला कर बोरे को टटोला. भ्रम दूर हो गया. ये नमक के ढेले थे.

3

पंडित अलोपीदीन अपने सजीले रथ पर सवार, कुछ सोते, कुछ जागते चले आते थे. अचानक कई गाड़ीवानों ने घबराए हुए आ कर जगाया और बोले—महाराज! दारोगा ने गाड़ियां रोक दी हैं और घाट पर खड़े आप को बुलाते हैं.

पंडित अलोपीदीन का लक्ष्मी जी पर अखंड विश्वास था. वह कहा करते थे कि संसार का तो कहना ही क्या, स्वर्ग में भी लक्ष्मी का ही राज्य है. उन का यह कहना यथार्थ ही था. न्याय और नीति सब लक्ष्मी के ही खिलौने हैं, इन्हें वह जैसे चाहती हैं नचाती हैं. लेटे ही लेटे गर्व से बोले, 'चलो, हम आते हैं.'

यह कह कर पंडित जी ने बड़ी निश्चिंतता से पान के बीड़े लगा कर खाए. फिर लिहाफ ओढ़े हुए दारोगा के पास आ कर बोले, 'बाबू जी आशीर्वाद! कहिए, हम से ऐसा कौन सा अपराध हुआ कि गाड़ियां रोक दी गईं. हम ब्राह्मणों पर तो आप की कृपा दृष्टि रहनी चाहिए.'

वंशीधर रुखाई से बोले, 'सरकारी हुक्म!'

पं. अलोपीदीन ने हंस कर कहा, 'हम सरकारी हुक्म को नहीं जानते और न सरकार को. हमारे सरकार तो आप ही हैं. हमारा और आप का तो घर का मामला है, हम कभी आप से बाहर हो सकते हैं? आप ने व्यर्थ का कष्ट उठाया. यह हो नहीं सकता कि इधर से जाएं और इस घाट के देवता को भेंट न चढ़ाएं. मैं तो आप की सेवा में स्वयं ही आ रहा था.'

वंशीधर पर ऐश्वर्य की मोहिनी वंशी का कुछ प्रभाव न पड़ा. ईमानदारी की नई उमंग थी. कड़क कर बोले, 'हम उन नमकहरामों में नहीं हैं जो कौड़ियों पर अपना ईमान बेचते फिरते हैं. आप इस समय हिरासत में हैं. आप का कायदे के अनुसार चालान होगा. बस, मुझे अधिक बातों की फुर्सत नहीं है. जमादार बदलूसिंह! तुम इन्हें हिरासत में ले चलो, मैं हुक्म देता हूं.'

पं. अलोपीदीन स्तंभित हो गए. गाड़ीवानों में हलचल मच गई. पंडित जी के जीवन में कदाचित यह पहला ही अवसर था कि पंडित जी को ऐसी कठोर बातें सुननी पड़ीं.

बदलूसिंह आगे बढ़ा, किंतु रोब के मारे यह साहस न हुआ कि उन का हाथ पकड़ सके. पंडित जी ने धर्म को धन का ऐसा निरादर करते कभी न देखा था. विचार किया कि यह अभी उद्दंड लड़का है. मायामोह के जाल में अभी नहीं पड़ा. अल्हड़ है, झिझकता है. बहुत दीनभाव से बोले, 'बाबू साहब, ऐसा न कीजिए, हम मिट जाएंगे. इज्जत धूल में मिल जाएगी. हमारा अपमान करने से आप के हाथ क्या आएगा. हम किसी तरह आप से बाहर थोड़े ही हैं.'

वंशीधर ने कठोर स्वर में कहा, 'हम ऐसी बातें नहीं सुनना चाहते.'

अलोपीदीन ने जिस सहारे को चट्टान समझ रखा था, वह पैरों के नीचे से खिसकता हुआ मालूम हुआ. स्वाभिमान और धनऐश्वर्य को कड़ी चोट लगी. किंतु अभी तक धन की सांख्यिक शक्ति का पूरा भरोसा था. अपने मुख्तार से बोले, 'लाला जी, एक हजार के नोट बाबू साहब को भेंट करो, आप इस समय भूखे सिंह हो रहे हैं.'

वंशीधर ने गरम हो कर कहा, 'एक हजार नहीं, एक लाख भी मुझे सच्चे मार्ग से नहीं हटा सकते.'

धर्म की इस बुद्धिहीनता, दृढ़ता और देवदुर्लभ त्याग पर मन बहुत झुंझलाया. अब दोनों शक्तियों में संग्राम होने लगा. धन ने उछलउछल कर आक्रमण करने शुरू किए. एक से पांच पांच से दस, दस से पंद्रह और पंद्रह से बीस हजार तक नौबत पहुंची, किंतु धर्म अलौकिक वीरता के साथ इस बहुसंख्यक सेना के सम्मुख अकेला पर्वत की भांति अटल,

अविचलित खड़ा था.

अलोपीदीन निराश हो कर बोले; 'अब इस से अधिक मेरा साहस नहीं. आगे आप को अधिकार है.'

वंशीधर ने अपने जमादार को ललकारा.

बदलूसिंह मन में दारोगा जी को गालियां देता हुआ पंडित अलोपीदीन की ओर बढ़ा. पंडित जी घबड़ा कर दोतीन कदम पीछे हट गए. अत्यंत दीनता से बोले, 'बाबू साहब, ईश्वर के लिए मुझ पर दया कीजिए, मैं पच्चीस हजार पर निपटारा करने को तैयार हूं.'

'असंभव बात है.'

'तीस हजार पर.'

'किसी तरह भी संभव नहीं.'

'क्या चालीस हजार पर भी नहीं?'

'चालीस हजार नहीं, चालीस लाख पर भी असंभव है.'

'बदलूसिंह, इस आदमी को अभी हिरासत में ले लो. अब मैं एक शब्द भी नहीं सुनना चाहता.'

धर्म ने धन को पैरों तले कुचल डाला. अलोपीदीन ने एक हृष्टपुष्ट मनुष्य को हथकड़ियां लिए हुए अपनी तरफ आते देखा. चारों ओर निराशा और कातर दृष्टि से देखने लगे. इस के बाद मूर्च्छित हो कर गिर पड़े.

4

दुनिया सोती थी पर दुनिया की जीभ जागती थी. सबेरे देखिए तो बालकवृद्ध सब के मुंह से यही बात सुनाई देती थी. जिसे देखिए वही पंडित जी के इस व्यवहार पर टीकाटिप्पणी कर रहा था, निंदा की बौछारें हो रही थीं, मानो संसार से अब पापी का पाप कट गया. पानी को दूध के नाम से बेचने वाला ग्वाला, कल्पित रोजनामचे भरने वाले अधिकारी वर्ग, रेल में बिना टिकट सफर करने वाले बाबू लोग, जाली दस्तावेज बनाने वाले सेठ और साहूकार यह सब के सब देवताओं की भांति गरदनें चला रहे थे.

जब दूसरे दिन पंडित अलोपीदीन अभियुक्त हो कर कांस्टेबलों के साथ, हाथों में हथकड़ियां, हृदय में ग्लानि और क्षोभ भरे, लज्जा से गरदन झुकाए अदालत की तरफ चले तो सारे शहर में हलचल मच गई. मेलों में कदाचित आंखें इतनी व्यग्र न होती होंगी. भीड़ के मारे छत और दीवार में कोई भेद न रहा.

किंतु अदालत में पहुंचने की देर थी. पंडित अलोपीदीन इस अगाध वन के सिंह थे. अधिकारी वर्ग उन के भक्त, अमले उन के सेवक, वकील मुख्तार उन के आज्ञापालक और अर्दली, चपरासी तथा चौकीदार तो उन के बिना मोल के गुलाम थे. उन्हें देखते ही लोग चारों तरफ से दौड़े.

सभी लोग विस्मित हो रहे थे. इसलिए नहीं कि अलोपीदीन ने क्यों यह कर्म किया बल्कि इसलिए कि वह कानून के पंजे में कैसे आए. ऐसा मनुष्य जिस के पास असाध्य साधन करने वाला धन और अनन्य वाचालता हो, वह क्यों कानून के पंजे में आए. प्रत्येक मनुष्य उन से सहानुभूति प्रकट करता था.

बड़ी तत्परता से इस आक्रमण को रोकने के निमित्त वकीलों की एक सेना तैयार की गई. न्याय के मैदान में धर्म और धन में युद्ध ठन गया.

वंशीधर, चुपचाप खड़े थे. उन के पास सत्य के सिवा न कोई बल था, न स्पष्ट भाषण के अतिरिक्त कोई शस्त्र. गवाह थे, किंतु लोभ से डावांडोल.

यहां तक कि मुंशी जी को न्याय भी अपनी ओर से कुछ खिंचा हुआ दीख पड़ता था. वह न्याय का दरबार था, परंतु उस के कर्मचारियों पर पक्षपात का नशा छाया हुआ था. किंतु पक्षपात और न्याय का क्या मेल? जहां पक्षपात हो वहां न्याय की कल्पना भी नहीं की जा सकती. मुकदमा शीघ्र ही समाप्त हो गया.

डिप्टी मजिस्ट्रेट ने अपनी तजवीज में लिखा: 'पंडित अलोपीदीन के विरुद्ध दिए गए प्रमाण निर्मूल और भ्रमात्मक हैं. वह एक बड़े भारी आदमी हैं. यह बात कल्पना के बाहर है कि उन्होंने थोड़े लाभ के लिए ऐसा दुस्साहस किया हो. यद्यपि नमक के दारोगा मुंशी वंशीधर का अधिक दोष नहीं, लेकिन यह बड़े खेद की बात है कि उन की उद्दंडता और विचारहीनता के कारण एक भलेमानुस को कष्ट झेलना पड़ा. हम प्रसन्न हैं कि वह अपने काम से सजग और सचेत रहता है, किंतु नमक से मुकदमे की बढ़ी हुई नमकहलाली ने उस के विवेक और बुद्धि को भ्रष्ट कर दिया. भविष्य में उसे होशियार रहना चाहिए.'

वकीलों ने यह फैसला सुना और उछल पड़े.

पंडित अलोपीदीन मुसकराते हुए बाहर निकले. स्वजन बांधवों ने रुपयों की लूट की. उदारता का सागर उमड़ पड़ा. उस की लहरों गे अदालत की नींव तक हिला दी.

जब वंशीधर बाहर निकले तो चारों ओर से उन के ऊपर व्यंग्यबाणों की वर्षा होने लगी. चपरासियों ने झुकझुक कर सलाम किए. किंतु इस समय एकएक कटुवाक्य, एकएक संकेत उन की गर्वाग्नि को प्रज्वलित कर रहा था.

कदाचित इस मुकदमे में सफल हो कर वह इस तरह अकड़ते हुए न चलते. आज उन्हें संसार का एक खेदजनक विचित्र अनुभव हुआ. न्याय और विद्वत्ता, लंबीचौड़ी उपाधियां, बड़ीबड़ी दाढ़ियां और ढीले चोंगे एक भी सच्चे आदर के पात्र नहीं हैं.

वंशीधर ने धन से बैर मोल लिया था, उस का मूल्य चुकाना अनिवार्य था. कठिनता से एक सप्ताह बीता होगा कि मुअत्तली का परवाना आ पहुंचा. कार्यपरायणता का दंड मिला. बेचारे भग्न हृदय, शोक और खेद से व्यथित घर को चले.

बूढ़े मुंशी जी तो पहले ही से कुड़बुड़ा रहे थे कि चलतेचलते इस लड़के को समझाया था, लेकिन इस ने एक न सुनी. सब मनमानी करता है. हम तो कलवार और कसाई के तगादे सहें, बुढ़ापे में भगत बन कर बैठें और वहां बस वही सूखी तनख्वाह! हम ने भी तो नौकरी की है और कोई ओहदेदार नहीं थे, लेकिन काम किया, दिल खोल कर किया और आप ईमानदार बनने चले हैं. घर में चाहे अंधेरा हो, मस्जिद में अवश्य दिया जलाएंगे. खेद ऐसी समझ पर! पढ़नालिखना सब अकारथ गया.

इस के थोड़े ही दिनों बाद, जब मुंशी वंशीधर इस दुरवस्था में घर पहुंचे और बूढ़े पिता जी ने समाचार सुना तो सिर पीट लिया. बोले, "जी चाहता है कि तुम्हारा और अपना सिर फोड़ लूं."

बहुत देर तक पछतापछता कर हाथ मलते रहे. क्रोध में कुछ कठोर बातें भी कहीं और

यदि वंशीधर वहां से टल न जाते तो अवश्य ही यह क्रोध विकट रूप धारण करता. वृद्धा माता को भी दुख हुआ. जगन्नाथ और रामेश्वर की यात्रा की कामनाएं मिट्टी में मिल गईं. पत्नी ने तो कई दिन तक सीधे मुंह से बात भी नहीं की.

इस प्रकार एक सप्ताह बीत गया. संध्या का समय था. बूढ़े मुंशी जी बैठे रामनाम की माला जप रहे थे. इसी समय उन के द्वार पर सजा हुआ रथ आ कर रुका. हरे और गुलाबी परदे, पछाहिएं बैलों की जोड़ी, उन की गरदनों में नीले धागे, सींगें पीतल से जड़ी हुई. कई नौकर लाठियां कंधों पर रखे साथ थे.

मुंशी जी आगवानी को दौड़े. देखा तो पंडित अलोपीदीन हैं. झुक कर दंडवत की और लल्लोचप्पो की बातें करने लगे, 'हमारा भाग्य उदय हुआ जो आप के चरण इस द्वार पर आए. आप हमारे पूज्य देवता हैं, आप को कौन सा मुंह दिखाएं, मुंह में तो कालिख लगी हुई है. किंतु क्या करें, लड़का अभागा कपूत है, नहीं तो आप से क्यों मुंह छिपाना पड़ता? ईश्वर निस्संतान चाहे रखे पर ऐसी संतान न दे.'

अलोपीदीन ने कहा—नहीं भाई साहब, ऐसा न कहिए.

मुंशी जी ने चकित हो कर कहा—ऐसी संतान को और क्या कहूं.

अलोपीदीन ने वात्सल्यपूर्ण स्वर में कहा—कुलतिलक और पुरुषों की कीर्ति उज्ज्वल करने वाले संसार में ऐसे कितने धर्मपरायण मनुष्य हैं जो धर्म पर अपना सब कुछ अर्पण कर सकें?

पं. अलोपीदीन ने वंशीधर से कहा—दारोगा जी, इसे खुशामद न समझिए, खुशामद करने के लिए मुझे इतना कष्ट उठाने की जरूरत न थी. उस रात को आप ने अपने अधिकार बल से मुझे अपनी हिरासत में लिया था, किंतु आज मैं स्वेच्छा से आप की हिरासत में आया हूं. मैं ने हजारों रईस और अमीर देखे, हजारों उच्च पदाधिकारियों से काम पड़ा, किंतु मुझे परास्त किया तो आप ने. मैं ने सब को अपना और अपने धन का गुलाम बना कर छोड़ दिया. मुझे आज्ञा दीजिए कि आप से कुछ विनय करूं.

वंशीधर ने अलोपीदीन को आते देखा तो उठ कर सत्कार किया; किंतु स्वाभिमान सहित. समझ गए कि यह महाशय मुझे लज्जित करने और जलाने आए हैं. क्षमाप्रार्थना की चेष्टा नहीं की; वरन उन्हें अपने पिता की यह ठकुरसुहाती की बात असह्य सी प्रतीत हुई. पर पंडित जी की बातें सुनीं तो मन की मैल मिट गई. पंडित जी की ओर उड़ती हुई दृष्टि से देखा. सद्भाव झलक रहा था.

गर्व ने अब लज्जा के सामने सिर झुका दिया. शर्माते हुए बोले—यह आप की उदारता है जो ऐसा कहते हैं. मुझ से कुछ अविनय हुई है, उसे क्षमा कीजिए. मैं धर्म की बेड़ी पें जकड़ा हुआ था, नहीं तो वैसे मैं आप का दास हूं. जो आज्ञा होगी, वह मेरे सिर माथे पर.

अलोपीदीन ने विनीत भाव से कहा—नदी तट पर आप ने मेरी प्रार्थना स्वीकार नहीं की थी, किंतु आज स्वीकार करनी पड़ेगी.

वंशीधर बोले—मैं किस योग्य हूं, किंतु जो कुछ सेवा मुझ से हो सकती है उस में त्रुटि न होगी.

अलोपीदीन ने एक स्टांप लगा हुआ पत्र निकाला और उसे वंशीधर के सामने रख कर बोले—इस पद को स्वीकार कीजिए और अपने हस्ताक्षर कर दीजिए. मैं ब्राह्मण हूं, जब

तक यह सवाल पूरा न कीजिएगा, द्वार से न हटूंगा.

मुंशी वंशीधर ने उस कागज को पढ़ा तो कृतज्ञता से आंखों में आंसू भर आए. पंडित अलोपीदीन ने उन को अपनी सारी जायदाद का स्थायी मैनेजर नियत किया था. छह हजार वार्षिक वेतन के अतिरिक्त रोजाना खर्च अलग, सवारी के लिए घोड़ा, रहने को बंगला, नौकरचाकर मुफ्त. कंपित स्वर में बोले—पंडित जी, मुझ में इतनी सामर्थ्य नहीं है कि आप की उदारता की प्रशंसा कर सकूं. किंतु ऐसे उच्च पद के योग्य नहीं हूं.

अलोपीदीन हंस कर बोले—मुझे इस समय एक अयोग्य मनुष्य की ही जरूरत है.

वंशीधर ने गंभीर भाव से कहा—यों मैं आप का दास हूं. आप जैसे कीर्तिवान, सज्जन पुरुष की सेवा करना मेरे लिए सौभाग्य की बात है. किंतु मुझ में न विद्या है, न बुद्धि, न वह स्वभाव जो इन त्रुटियों की पूर्ति कर देता है. ऐसे महान कार्य के लिए एक बड़े मर्मज्ञ अनुभवी मनुष्य की जरूरत है.

अलोपीदीन ने कलमदान से कलम निकाली और उसे वंशीधर के हाथ में दे कर बोले, 'न मुझे विद्वत्ता की चाह है, न अनुभव की, न मर्मज्ञता की, न कार्य कुशलता की. इन गुणों के महत्त्व का परिचय खूब पा चुका हूं. अब सौभाग्य और सुअवसर ने मुझे वह मोती दे दिया है जिस के सामने योग्यता और विद्वत्ता की चमक फीकी पड़ जाती है. यह कलम लीजिए, अधिक सोचविचार न कीजिए, दस्तखत कर दीजिए. परमात्मा से यही प्रार्थना है कि वह आप को सदैव वही नदी के किनारे वाला, बेमुरौवत, उद्दंड, कठोर परंतु धर्मनिष्ठ दारोगा बनाए रखे.

वंशीधर की आंखें डबडबा आईं. हृदय के संकुचित पात्र में इतना एहसान न समा सका. एक बार फिर पंडित जी की ओर भक्ति और श्रद्धा की दृष्टि से देखा और कांपते हुए हाथ से मैनेजरी के कागज पर हस्ताक्षर कर दिए.

अलोपीदीन ने प्रफुल्लित हो कर उन्हें गले लगा लिया.

उद्धार

हिंदू समाज की वैवाहिक प्रथा इतनी दूषित, इतनी चिंताजनक, इतनी भयंकर हो गई है कि कुछ समझ में नहीं आता, उस का सुधार क्यों कर हो. बिरले ही ऐसे मातापिता होंगे जिन के सात पुत्रों के बाद भी एक कन्या उत्पन्न हो जाए तो वह सहर्ष उस का स्वागत करें.

कन्या का जन्म होते ही उस के विवाह की चिंता सिर पर सवार हो जाती है और आदमी उसी में डुबकियां खाने लगता है. अवस्था इतनी निराशामय और भयानक हो गई है कि ऐसे मातापिताओं की कमी नहीं है जो कन्या की मृत्यु पर हृदय से प्रसन्न होते हैं, मानो सिर से बाधा टली.

इस का कारण केवल यही है कि दहेज की दर, दिन दूनी रात चौगुनी, पावस काल के जल वेग के समान बढ़ती चली जा रही है. जहां दहेज की सैकड़ों में बातें होती थीं, वहां अब हजारों तक नौबत पहुंच गई है. अभी बहुत दिन नहीं गुजरे कि एक या दो हजार रुपए दहेज केवल बड़े घरों की बात थी, छोटीछोटी शादियां पांच सौ से एक हजार तक तय हो जाती थीं; पर अब मामूली से मामूली विवाह भी तीनचार हजार के नीचे नहीं तय होते. खर्च का तो यह हाल है और शिक्षित समाज की निर्धनता और दरिद्रता दिनों दिन बढ़ती जाती है. इस का अंत क्या होगा ईश्वर ही जाने.

बेटे एक दरजन भी हों तो मातापिता को चिंता नहीं होती. वह अपने ऊपर उन के विवाह भार को अनिवार्य नहीं समझते, यह उन के लिए 'कंपलसरी' विषय नहीं, 'आप्शनल' विषय है. होगा तो कर देंगे; नहीं कह देंगे—बेटा, खाओ कमाओ, समाई हो तो विवाह कर लेना. बेटों की कुचरित्रता कलंक की बात नहीं समझी जाती; लेकिन कन्या का विवाह तो करना ही पड़ेगा, उस से भाग कर कहां जाएंगे?

अगर विवाह में विलंब हुआ और कन्या के पांव कहीं ऊंचेनीचे पड़ गए तो फिर कुटुंब की नाक कट गई; वह पतित हो गया, टाट बाहर कर दिया गया. अगर वह इस दुर्घटना को सफलता के साथ गुप्त रख सका तब तो कोई बात नहीं; उस को कलंकित करने का किसी को साहस नहीं; लेकिन अभाग्यवश यदि वह इसे छिपा न सका, भंडाफोड़ हो गया तो फिर मातापिता के लिए, भाईबंधुओं के लिए संसार में मुंह दिखाने को स्थान नहीं रहता. कोई अपमान इस से दुस्सह, कोई विपत्ति इसे से भीषण नहीं. किसी भी व्याधि की इस से भयंकर कल्पना नहीं की जा सकती.

लुत्फ तो यह है कि जो लोग बेटियों के विवाह की कठिनाइयों को भोग चुके होते हैं वही अपने बेटों के विवाह के अवसर पर बिलकुल भूल जाते हैं कि हमें कितनी ठोकरें खानी

पड़ी थीं, जरा भी सहानुभूति नहीं प्रकट करते, बल्कि कन्या के विवाह में जो तावान उठाया था उसे चक्रवृद्धि ब्याज के साथ बेटे के विवाह में वसूल करने पर कटिबद्ध हो जाते हैं. कितने ही मातापिता इसी चिंता में घुलघुल कर अकाल मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं; कोई संन्यास ग्रहण कर लेता है, कोई बूढ़े के गले कन्या को मढ़ कर अपना गला छुड़ाता है, पात्र कुपात्र के विचार करने का मौका कहां, ठेलमठेल है.

मुंशी गुलजारीलाल ऐसे ही हतभागे पिताओं में थे. यों उन की स्थिति बुरी न थी दोढाई सौ रुपए महीने वकालत से पीट लेते थे, पर खानदानी आदमी थे, उदार हृदय, बहुत किफायत करने पर भी माकूल बचत न हो सकती थी. संबंधियों का आदरसत्कार न करें तो नहीं बनता, मित्रों की खातिरदारी न करें तो नहीं बनता फिर ईश्वर के दिए हुए दोतीन पुत्र थे, उन का पालनपोषण, शिक्षण का भार था, क्या करते!

पहली कन्या का विवाह उन्होंने अपनी हैसियत के अनुसार अच्छी तरह किया और दूसरी पुत्री का विवाह टेढ़ी खीर हो रहा था. यह आवश्यक था कि विवाह अच्छे घराने में हो, अन्यथा लोग हंसेंगे और अच्छे घराने के लिए कम से कम पांच हजार का तखमीना था. उधर पुत्री सयानी होती जाती थी. वह अनाज जो लड़के खाते थे, वह भी खाती थी; लेकिन लड़कों को देखो तो जैसे सूखे का रोग लगा हो और लड़की शुक्ल पक्ष का चांद हो रही थी.

बहुत दौड़धूप करने पर बेचारे को एक लड़का मिला. बाप आबकारी के विभाग में 400 रु. का नौकर था, लड़का भी सुशिक्षित. स्त्री से आ कर बोले, 'लड़का कहता है, मैं अपना विवाह न करूंगा, बाप ने कितना समझाया, मैं ने कितना समझाया, औरों ने समझाया, पर वह टस से मस नहीं होता. कहता है, मैं अभी विवाह न करूंगा.'

'समझ में नहीं आता विवाह से क्यों इतनी घृणा करता है. कोई कारण नहीं बतलाता, बस यही कहता है, मेरी इच्छा. मांबाप का एकलौता लड़का है. उन की परम इच्छा है कि इस का विवाह हो जाए, पर करें क्या? यों उन्होंने फलदान तो रख लिया है पर मुझ से कह दिया है कि लड़का स्वभाव का हठीला है, अगर न मानेगा तो फलदान आप को लौटा दिया जाएगा.'

स्त्री ने कहा—तुम ने लड़के को एकांत में बुला कर पूछा नहीं?

गुलजारीलाल—बुलाया था. बैठा रोता रहा, फिर उठ कर चला गया. तुम से क्या कहूं, उस के पैरों पर गिर पड़ा; लेकिन बिना कुछ कहे उठ कर चला गया.

स्त्री—देखो, इस लड़की के पीछे क्याक्या झेलना पड़ता है?

गुलजारीलाल—कुछ नहीं, आजकल के लौंडे सैलानी होते हैं. अंगरेजी पुस्तकों में पढ़ते हैं कि विलायत में कितने ही लोग अविवाहित रहना ही पसंद करते हैं. बस यही सनक सवार हो जाती है कि निर्द्वंद्व रहने में ही जीवन की सुख और शांति है. जितनी मुसीबतें हैं वे सब विवाह ही में हैं. मैं भी कालेज में था तब सोचा करता था कि अकेला रहूंगा और मजे से सैरसपाटा करूंगा.

स्त्री—है तो वास्तव में बात यही. विवाह ही तो सारे मुसीबतों की जड़ है. तुम ने विवाह न किया होता तो क्यों ये चिंताए होतीं? मैं भी क्वांरी रहती तो चैन करती.

इस के एक महीना बाद मुंशी गुलजारीलाल के पास वर ने यह पत्र लिखा—

'पूज्यवर,

सादर प्रणाम.

मैं आज बहुत असमंजस में पड़ कर यह पत्र लिखने का साहस कर रहा हूं. इस धृष्टता को क्षमा कीजिएगा.

आप के जाने के बाद से मेरे पिता जी और माता जी दोनों मुझ पर विवाह करने के लिए नाना प्रकार से दबाव डाल रहे हैं. माता जी रोती हैं, पिता जी नाराज होते हैं. वह समझते हैं कि मैं अपनी जिद के कारण से भागता हूं. कदाचित उन्हें यह भी संदेह हो रहा है कि मेरा चरित्र भ्रष्ट हो गया हैं. मैं वास्तविक कारण बताते हुए डरता हूं कि इन लोगों को दुख होगा और आश्चर्य नहीं कि शोक में उन के प्राणों पर ही बन जाए.

इसलिए अब तक मैं ने जो बात गुप्त रखी थी, वह आज विवश हो कर आप से प्रकट करता हूं और आप से साग्रह निवेदन करता हूं कि आप इसे गोपनीय समझिएगा और किसी दशा में भी उन लोगों के कानों में इस की भनक न पड़ने दीजिएगा. जो होना है वह तो होगा ही, पहले ही से क्यों उन्हें शोक में डुबाऊं.

मुझे 5-6 महीनों से यह अनुभव हो रहा है कि मैं क्षय रोग से ग्रसित हूं. उस के सभी लक्षण प्रकट होते जाते हैं. डाक्टरों की भी यही राय है. यहां सब से अनुभवी जो दो डाक्टर हैं, उन दोनों ही से मैं ने अपनी आरोग्य परीक्षा कराई और दोनों ही ने स्पष्ट कहा कि तुम्हें सिल (तपेदिक) है. अगर मातापिता से यह कह दूं तो वे रोरो कर मर जाएंगे. जब यह निश्चित है कि मैं संसार में थोड़े ही दिनों का मेहमान हूं तो मेरे लिए विवाह की कल्पना करना भी पाप है. संभव है कि मैं विशेष प्रयत्न कर के साल दो साल जीवित रहूं; पर वह दशा और भी भयंकर होगी, क्योंकि अगर कोई संतान हुई तो वह भी मेरे संस्कार से अकाल मृत्यु पाएगी और कदाचित स्त्री को भी इसी रोग राक्षस का भक्षण बनना पड़े. मेरे अविवाहित रहने से जो बीतेगी, मुझ ही पर बीतेगी. विवाहित हो जाने से मेरे साथ और कई जीवों का नाश हो जाएगा. इसलिए आप से मेरी प्रार्थना है कि मुझे इस बंधन में डालने के लिए आग्रह न कीजिए, अन्यथा आप को पछताना पड़ेगा.

सेवक

'हजारीलाल.'

पत्र पढ़ कर गुलजारीलाल ने स्त्री की ओर देखा और बोले—इस पत्र के विषय में तुम्हारा क्या विचार है.

स्त्री—मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि उस ने बहाना रचा है.

गुलजारीलाल—बसबस, ठीक यही मेरा भी विचार है. उस ने समझा है कि बीमारी का बहाना कर दूंगा तो लोग आप ही हट जाएंगे. असल में बीमारी कुछ नहीं. मैं ने तो देखा ही था, चेहरा चमक रहा था. बीमार का मुंह छिपा नहीं रहता.

स्त्री—राम नाम ले के विवाह करो. कोई किसी का भाग्य थोड़े ही पढ़े बैठा है.

गुलजारीलाल—यही तो मैं भी सोच रहा हूं.

स्त्री—न हो किसी डाक्टर से लड़के को दिखाओ. कहीं सचमुच यह बीमारी हो तो

बेचारी अंबा कहीं की न रहे.

गुलजारीलाल—तुम भी पागल हुई हो क्या? सब हीलेहवाले हैं. इन छोकरों के दिल का हाल मैं खूब जानता हूं. सोचता होगा अभी सैरसपाटे कर रहा हूं, विवाह हो जाएगा तो यह गुलछर्रे कैसे उड़ेंगे!

स्त्री—तो शुभ मुहुर्त देख कर लगन भेजवाने की तैयारी करो.

3

हजारीलाल बड़े धर्म संदेह में था. उस के पैरों में जबरदस्ती विवाह की बेड़ी डाली जा रही थी और वह कुछ न कर सकता था. उस ने ससुर को अपना कच्चा चिट्ठा सुनाया; मगर किसी ने उस की बातों पर विश्वास न किया.

मांबाप से अपनी बीमारी का हाल कहने का उसे साहस न होता था न जाने उन के दिल पर क्या गुजरे, न जाने क्या कर बैठें? कभी सोचता किसी डाक्टर की शहादत ले कर ससुर के पास भेज दूं, मगर फिर ध्यान आता, यदि उन लोगों को उस पर भी विश्वास न आया, तो?

आजकल डाक्टरी सनद ले लेना कौन सा मुश्किल काम है. सोचेंगे, किसी डाक्टर को कुछ दे दिला कर लिखा लिया होगा. शादी के लिए तो इतना आग्रह हो रहा था, उधर डाक्टरों ने स्पष्ट कह दिया था कि अगर तुम ने शादी की तो तुम्हारा जीवन सूत्र और भी निर्बल हो जाएगा. महीनों की जगह दिनों में वारान्यारा हो जाने की संभावना है.

लग्न आ चुकी थी. विवाह की तैयारियां हो रही थीं, मेहमान आते जाते थे और हजारीलाल घर से भागाभागा फिरता था. कहां चला जाऊं? विवाह की कल्पना ही से उस के प्राण सूख जाते थे. आह! उस अबला की क्या गति होगी? जब उसे यह बात मालूम होगी तो वह मुझे अपने मन में क्या कहेगी? कौन इस पाप का प्रायश्चित करेगा? नहीं, उस अबला पर घोर अत्याचार न करूंगा, उसे वैधव्य की आग में न जलाऊंगा.

मेरी जिंदगी ही क्या, आज न मरा कल मरूंगा, कल नहीं तो परसों, तो क्यों न आज ही मर जाऊं. आज ही जीवन का और उस के साथ सारी चिंताओं का, सारी विपत्तियों का अंत कर दूं. पिता जी रोएंगे, अम्मां प्राण त्याग देंगी; लेकिन एक बालिका का जीवन तो सफल हो जाएगा, मेरे बाद कोई अभागा अनाथ तो न रोएगा.

क्यों न चल कर पिता जी से कह दूं? वह एकदो दिन दुखी रहेंगे, अम्मां जी दोएक रोज शोक से निराहार रह जाएंगी, कोई चिंता नहीं. अगर मातापिता के इतने कष्ट से एक युवती की प्राण रक्षा हो जाए तो क्या छोटी बात है?

यह सोच कर वह धीरे से उठा और आ कर पिता के सामने खड़ा हो गया.

रात के दस बजे गए थे. बाबू दरबारीलाल चारपाई पर लेटे हुए हुक्का पी रहे थे. आज इन्हें सारा दिन दौड़ते गुजरा था. शामियाना तय किया; बाजे वालों को बयाना दिया; आतिशबाजी, फुलवारी आदि का प्रबंध किया, घंटों ब्राह्मणों के पास सिर मारते रहे, इस वक्त जरा कमर सीधी कर रहे थे कि सहसा हजारीलाल को सामने देख कर चौंक पड़े. उस का उतरा हुआ चेहरा, सजल आंखें और कुंठित मुख देखा तो कुछ चिंतित हो कर बोले—क्यों लालू, तबीयत तो अच्छी है न? कुछ उदास मालूम होते हो.

हजारीलाल—मैं आप से कुछ कहना चाहता हूं; पर भय होता है कि कहीं आप अप्रसन्न न हों.

दरबारीलाल—समझ गया, वही पुरानी बात है न? उस के सिवा कोई दूसरी बात हो तो शौक से कहो.

हजारीलाल—खेद है कि मैं उसी विषय में कुछ कहना चाहता हूं.

दरबारीलाल—यही कहना चाहते हो न कि मुझे इस बंधन में न डालिए, मैं इस के अयोग्य हूं, मैं यह भार सह नहीं सकता, बेड़ी मेरी गरदन को तोड़ देगी, आदि या और कोई नई बात?

हजारीलाल—जी नहीं, नई बात है. मैं आप की आज्ञा पालन करने के लिए सब प्रकार से तैयार हूं; पर एक ऐसी बात है, जिसे मैं ने अब तक छिपाया था, उसे भी प्रकट कर देना चाहता हूं. इस के बाद आप जो कुछ निश्चय करेंगे उसे मैं शिरोधार्य करूंगा.

हजारीलाल ने बड़े विनीत शब्दों में अपना आशय कहा, डाक्टरों की राय भी बयान की और अंत में बोले—ऐसी दशा में मुझे पूरी आशा है कि आप मुझे विवाह करने के लिए बाध्य न करेंगे.

दरबारीलाल ने पुत्र के मुख की ओर गौर से देखा, कहीं जर्दी का नाम न था, इस कथन पर विश्वास न आया; पर अपना अविश्वास छिपाने और अपना हार्दिक शोक प्रकट करने के लिए वह कई मिनट तक गहरी चिंता में मग्न रहे. इस के बाद पीड़ित कंठ से बोले—बेटा, इस दशा में तो विवाह करना और भी आवश्यक है.

ईश्वर न करे कि हम वह बुरा दिन देखने के लिए जीते रहें; पर विवाह हो जाने से तुम्हारी निशानी तो रह जाएगी. ईश्वर ने कोई संतान दे दी तो वही हमारे बुढ़ापे की लाठी होगी, उसी का मुंह देखदेख कर दिल को समझाएंगे, जीवन का कुछ आधार तो रहेगा. फिर आगे क्या होगा यह कौन कह सकता है? डाक्टर किसी की कर्मरेख तो नहीं पढ़े होते, ईश्वर की लीला अपरंपार है. डाक्टर उसे नहीं समझ सकते. तुम निश्चिंत हो कर बैठो, हम जो कुछ करते हैं, करने दो. भगवान चाहेंगे तो सब कल्याण ही होगा.

हजारीलाल ने इस का कोई उत्तर नहीं दिया. आंखें डबडबा आईं, कंठावरोध के कारण मुंह तक न खोल सका. चुपके से आ कर अपने कमरे में लेट रहा.

तीन दिन और गुजर गए, पर हजारीलाल कुछ निश्चय न कर सका. विवाह की तैयारियां पूरी हो गई थीं. आंगन में मंडप गड़ गया था; डाल, गहने संदूकों में रखे जा चुके थे. मंत्रेयी की पूजा हो चुकी थी और द्वार पर बाजों का शोर मचा हुआ था. मुहल्ले के लड़के जमा हो कर बाजा सुनते थे और उल्लास से इधरउधर दौड़ते थे.

संध्या हो गई थी. बरात आज रात की गाड़ी से जाने वाली थी. बरातियों ने अपने वस्त्राभूषण पहनने शुरू किए. कोई नाई से बाल बनवाता था और चाहता था कि खत ऐसा साफ हो जाए मानो वहां बाल कभी थे ही नहीं, बूढ़े अपने पके बालों को उखड़वा कर जवान बनने की चेष्टा कर रहे थे. तेल, साबुन, उबटन की लूट मची हुई थी और हजारीलाल बगीचे में एक वृक्ष के नीचे उदास बैठा हुआ सोच रहा था, क्या करूं?

अंतिम निश्चय की घड़ी सिर पर खड़ी थी. अब एक क्षण भी विलंब करने का मौका न था. अपनी वेदना किस से कहे, कोई सुनने वाला न था.

उस ने सोचा हमारे मातापिता कितने अदूरदर्शी हैं, अपनी उमंग में इन्हें इतना भी नहीं सूझता कि वधू पर क्या गुजरेगी. वधू के मातापिता भी इतने अंधे हो रहे हैं कि देख कर भी नहीं देखते, जान कर नहीं जानते.

क्या यह विवाह है? कदापि नहीं. यह तो लड़की को कुएं में डालना है, भाड़ में झोंकना है, कुंद छुरे से रेतना है. कोई यातना इतनी दुस्सह, इतनी हृदयविदारक नहीं हो सकती जितनी वैधव्य, और लोग जानबूझ कर अपनी पुत्री को वैधव्य के अग्निकुंड में डाल देते हैं. यह मातापिता हैं? कदापि नहीं. यह लड़की के शत्रु हैं, कसाई हैं, बधिक हैं, हत्यारे हैं. क्या इन के लिए कोई दंड नहीं? जो जान बूझ कर अपनी प्रिय संतान के खून से अपने हाथ रंगते हैं, उस के लिए कोई दंड नहीं? समाज भी उन्हें दंड नहीं देता, कोई कुछ नहीं कहता. हाय!

यह सोच कर हजारीलाल उठा और एक ओर चुपचाप चल दिया. उस के मुख पर तेज छाया हुआ था. उस ने आत्मबलिदान से इस कष्ट का निवारण करने का दृढ़ संकल्प कर लिया था. उसे मृत्यु का लेशमात्र भी भय न था. वह उस दशा को पहुंच गया था जब सारी आशाएं मृत्यु पर ही अवलंबित हो जाती हैं.

उस दिन से फिर किसी ने हजारीलाल की सूरत नहीं देखी. मालूम नहीं जमीन खा गई या आसमान. नदियों में जाल डाले गए, कुओं में बांस पड़ गए, पुलिस में हुलिया गया, समाचार पत्रों में विज्ञप्ति निकाली गई, पर कहीं पता न चला.

कई हफ्तों के बाद, छावनी रेलवे स्टेशन से एक मील पश्चिम की ओर सड़क पर कुछ हड्डियां मिलीं. लोगों को अनुमान हुआ कि हजारीलाल ने गाड़ी के नीचे दब कर जान दी, पर निश्चित रूप से कुछ न मालूम हुआ.

4

भादों का महीना था और तीज का दिन. घरों में सफाई हो रही थी. सौभाग्यवती रमणियां सोलहों शृंगार किए गंगा स्नान करने जा रही थीं. अंबा स्नान कर के लौट आई थी और तुलसी के कच्चे चबूतरे के सामने खड़ी वंदना कर रही थी. पतिगृह में उस की यह पहली तीज थी, बड़ी उमंगों से व्रत रखा था.

सहसा उस के पति ने अंदर से आ कर उसे सहास नेत्रों से देखा और बोला—मुंशी दरबारीलाल तुम्हारे कौन हैं, यह उन के यहां से तुम्हारे लिए तीज पठौनी आई है. अभी डाकिया दे गया है.

यह कह कर उस ने एक पारसल चारपाई पर रख दिया. दरबारीलाल का नाम सुनते ही अंबा की आंखें सजल हो गईं. वह लपकी हुई आई और पारसल को हाथ में ले कर देखने लगी; पर उस की हिम्मत न पड़ी कि उसे खोले. पिछली स्मृतियां जीवित हो गईं, हृदय में हजारीलाल के प्रति श्रद्धा का एक उद्‌गार सा उठ पड़ा.

आह! यह उसी देवात्मा के आत्मबलिदान का पुनीत फल है कि मुझे यह दिन देखना नसीब हुआ. ईश्वर उन्हें सद्‌गति दें. वह आदमी नहीं, देवता थे, जिस ने मेरे कल्याण के निमित्त अपने प्राण तक समर्पण कर दिए.

पति ने पूछा—दरबारीलाल तुम्हारे चचा हैं.

अंबा—हां.

पति—इस पत्र में हजारीलाल का नाम लिखा है, यह कौन है?

अम्मा—यह मुंशी दरबारीलाल के बेटे हैं.

पति—तुम्हारे चचेरे भाई?

अंबा—नहीं, मेरे परम दयालु उद्धारक, जीवनदाता, मुझे अथाह जल में डूबने से बचाने वाले, मुझे सौभाग्य का वरदान देने वाले.

पति ने इस भाव से कहा मानो कोई भूली हुई बात याद आ गई हो—अहा! मैं समझ गया. वास्तव में वह मनुष्य नहीं देवता थे.

मुक्तिधन

भारतवर्ष में जितने व्यवसाय हैं, उन सब में लेनदेन का व्यवसाय सब से लाभदायक है. आमतौर पर सूद की दर 25 रु. सैकड़ा सालाना है. प्रचुर स्थावर या जंगम संपत्ति पर 12 रु. सैकड़े सालाना सूद लिया जाता है, इस से कम ब्याज पर रुपया मिलना प्रायः असंभव है.

बहुत कम ऐसे व्यवसाय हैं, जिन में 15 रु. सैकड़े से अधिक लाभ हो और वह भी बिना किसी झंझट के. उस पर नजराने की रकम अलग, लिखाई, दलाली अलग, अदालत का खर्चा अलग. ये सब रकमें भी किसी न किसी तरह महाजन ही की जेब में जाती हैं. यही कारण है कि यहां लेनदेन का धंधा इतनी तरक्की पर है.

वकील, डाक्टर, सरकारी कर्मचारी, जमींदार कोई भी जिस के पास कुछ फालतू धन हो, यह व्यवसाय कर सकता है. अपनी पूंजी के सदुपयोग का यह सर्वोत्तम साधन है.

लाला दाऊदयाल भी इसी श्रेणी के महाजन थे. वह कचहरी में मुख्तारगिरी करते थे और जो कुछ बचत होती थी, उसे 25-30 रुपए सैकड़ा वार्षिक ब्याज पर उठा देते थे. उन का व्यवहार अधिकतर निम्न श्रेणी के मनुष्यों से ही रहता था. उच्च वर्ण वालों से वह चौंकन्ने रहते थे, उन्हें अपने यहां फटकने ही न देते थे.

उन का कहना था (और प्रत्येक व्यवयायी पुरुष उस का समर्थन करता है) कि ब्राह्मण, क्षत्रिय या कायस्थ को रुपए देने से यह कहीं अच्छा है कि रुपया कुएं में डाल दिया जाए. इन के पास रुपए लेते समय तो अतुल संपत्ति होती है; लेकिन रुपए हाथ में आते ही वह सारी संपत्ति गायब हो जाती है उस पर पत्नी, पुत्र या भाई का अधिकार हो जाता है अथवा यह प्रकट होता है कि उस संपत्ति का अस्तित्व ही न था. इन की कानूनी व्यवस्थाओं के सामने बड़ेबड़े नीति शास्त्र के विद्वान भी मुंह की खा जाते हैं.

लाला दाऊदयाल एक दिन कचहरी से घर आ रहे थे. रास्ते में उन्होंने एक विचित्र घटना देखी. एक मुसलमान खड़ा अपनी गऊ बेच रहा था, और कई आदमी उसे घेरे खड़े थे. कोई उस के हाथ में रुपए रखे देता था, कोई उस के हाथ से गऊ की पगहिया छीनने की चेष्टा करता था; किंतु वह गरीब मुसलमान एक बार उन ग्राहकों के मुंह की ओर देखता था और कुछ सोच कर पगहिया को और भी मजबूत पकड़ लेता था.

गऊ मोहिनी रूप थी. छोटी सी गरदन, भारी पुट्ठे और दूध से भरे हुए थन थे. पास ही एक सुंदर, बलिष्ठ बछड़ा गऊ की गरदन से लगा हुआ खड़ा था. मुसलमान बहुत क्षुब्ध और दुखी मालूम होता था. वह करुण नेत्रों से गऊ की ओर देखता और दिल मसोस कर रह

जाता था.

दाऊदयाल गऊ को देख कर रीझ गए. पूछा—क्यों जी, यह गऊ बेचते हो? क्या नाम है तुम्हारा?

मुसलमान ने दाऊदयाल को देखा, तो प्रसन्नमुख उन के समीप जा कर बोला—हां हुजूर, बेचता हूं.

दाऊ.—कहां से लाए हो? तुम्हारा नाम क्या है?

मुस.—नाम तो है रहमान. पचौली में रहता हूं.

दाऊ.—दूध देती है.

मुस.—हां हुजूर, एक बेला में तीन सेर दुह लीजिए. अभी दूसरा ही तो बेत है. इतनी सीधी है कि बच्चा भी दुह ले. बच्चे पैर के पास खेलते रहते हैं, पर क्या मजाल कि सिर भी हिलाए.

दाऊ.—कोई तुम्हें यहां पहचानता है.

मुख्तार साहब को शुबहा हुआ कि कहीं चोरी का माल न हो.

मुस.—नहीं हुजूर; गरीब आदमी हूं, मेरी किसी से जानपहचान नहीं है.

दाऊ.—क्या दाम मांगते हो?

रहमान ने 50 रु. बतलाए. मुख्तार साहब को 30 रुपए का माल जंचा. कुछ देर तक दोनों ओर से मोलभाव होता रहा. एक को रुपयों की गरज थी और दूसरे को गऊ को चाह. सौदा पटने में कोई कठिनाई न हुई. 35 रु. पर सौदा तय हो गया.

रहमान ने सौदा तो चुका लिया; पर अब भी वह मोह के बंधन में पड़ा हुआ था. कुछ देर तक सोच में डूबा खड़ा रहा, फिर गऊ को लिए मंद गति से दाऊदयाल के पीछेपीछे चला. तब एक आदमी ने कहा—अबे, हम 36 रु. देते हैं. हमारे साथ चल.

रहमान—नहीं देते तुम्हें; क्या कुछ जबरदस्ती है?

दूसरे आदमी ने कहा—हम से 40 रु. ले ले, अब तो खुश हुआ?

यह कह कर उस ने रहमान के हाथ से गाय को ले लेना चाहा; मगर रहमान ने हामी न भरी. आखिर उन सब ने निराश हो कर अपनी राह ली.

रहमान जब जरा दूर निकल आया, तो दाऊदयाल से बोला—हुजूर, आप हिंदू हैं इसे ले कर आप पालेंगे, इस की सेवा करेंगे. ये सब कसाई हैं, इन के हाथ मैं 50 रु. में भी कभी न बेचता. आप बड़े मौके से आ गए, नहीं तो ये सब जबरदस्ती गऊ को छीन ले जाते. बड़ी विपत में पड़ गया हूं सरकार, तब यह गाय बेचने निकला हूं. नहीं तो इस घर की लक्ष्मी को कभी न बेचता. इसे अपने हाथों से पालापोसा है. कसाइयों के हाथ कैसे बेच देता? सरकार इसे जितनी ही खली देंगे, उतना ही यह दूध देगी. भैंस का दूध भी इतना मीठा और गाढ़ा नहीं होता. हुजूर से एक अरज और है, अपने चरवाहे को डांट दीजिएगा कि इसे मारेपीटे नहीं.

दाऊदयाल ने चकित हो कर रहमान की ओर देखा. भगवान! इस श्रेणी के मनुष्य में भी इतना सौजन्य, इतनी सहृदयता है! यहां तो बड़ेबड़े तिलक त्रिपुंडधारी महात्मा कसाइयों के हाथ गउएं बेच जाते हैं; एक पैसे का घाटा भी नहीं उठाना चाहते. और यह गरीब 5 रु. का घाटा सह कर इसलिए मेरे हाथ गऊ बेच रहा है कि यह किसी कसाई के

हाथ न पड़ जाए. गरीबों में भी इतनी समझ हो सकती है!

उन्होंने घर आ कर रहमान को रुपए दिए. रहमान ने रुपए गांठ में बांधे, एक बार फिर गऊ को प्रेम भरी आंखों से देखा और दाऊदयाल को सलाम कर के चला गया.

रहमान एक गरीब किसान था और गरीब के सभी दुश्मन होते हैं. जमींदार ने इजाफा लगान का दावा दायर किया था. उसी की जवाबदेही करने के लिए रुपयों की जरूरत थी. घर में बैलों के सिवा और कोई संपत्ति न थी. वह इस गऊ को प्राणों से भी प्रिय समझता था; पर रुपयों की कोई तदबीर न हो सकी, तो विवश हो कर गाय बेचनी पड़ी.

2

पचौली में मुसलमानों के कई घर थे. अबकी कई साल के बाद हज का रास्ता खुला था. पाश्चात्य महासमर के दिनों में राह बंद थी. गांव के कितने ही स्त्रीपुरुष हज करने चले. रहमान की बूढ़ी माता भी हज के लिए तैयार हुई. रहमान से बोली—बेटा, इतना सबाब करो. बस मेरे दिल में यही एक अरमान बाकी है. इस अरमान को लिए हुए क्यों दुनिया से जाऊं; खुदा तुम को इस नेकी की सजा (फल) देगा.

मातृभक्ति ग्रामीणों का विशिष्ट गुण है. रहमान के पास इतने रुपए कहां थे कि हज के लिए काफी होते; पर माता की आज्ञा कैसे टालता? सोचने लगा, किसी से उधार ले लूं. कुछ अबकी ऊख पेर कर दे दूंगा, कुछ अगले साल चुका दूंगा. अल्लाह के फजल से ऊख ऐसी हुई है कि कभी न हुई थी. यह मां की दुआ ही का फल है. मगर किस से लूं? कम से कम 200 रु. हों, तो काम चले. किसी महाजन से जानपहचान भी तो नहीं है.

यहां जो दोएक बनिए लेनदेन करते हैं, वे तो असामियों की गरदन ही रेतते हैं. चलूं, लाला दाऊदयाल के पास. इन सब से तो वही अच्छे हैं. सुना है, वादे पर रुपए लेते हैं, किसी तरह नहीं छोड़ते, लोनी चाहे दीवार को छोड़ दे, दीमक चाहे लकड़ी को छोड़ दे, पर वादे पर रुपए न मिले तो असामियों को नहीं छोड़ते. बात पीछे करते हैं, नालिश पहले.

हां, इतना है कि असामियों की आंख में धूल नहीं झोंकते, हिसाबकिताब साफ रखते हैं. कई दिन वह इसी सोचविचार में पड़ा रहा कि उन के पास जाऊं या न जाऊं. अगर कहीं वादे पर रुपए न पहुंचे, तो? बिना नालिश किए न मानेंगे. घरबार, बैलबधिया, सब नीलाम करा लेंगे. लेकिन जब कोई वश न चला, तो हार कर दाऊदयाल के ही पास गया और रुपए कर्ज मांगे.

दाऊ.—तुम्हीं ने तो मेरे हाथ गऊ बेची थी न?

रहमान—हां हुजूर!

दाऊ.—रुपए तो तुम्हें दे दूंगा; लेकिन मैं वादे पर रुपए लेता हूं. अगर वादा पूरा न किया, तो तुम जानो. फिर मैं जरा भी रियायत न करूंगा. बताओ कब दोगे?

रहमान ने मन में हिसाब लगा कर कहा—सरकार, दो साल की मियाद रख लें.

दाऊ.—अगर दो साल में न दोगे, तो ब्याज की दर 32 रु. सैकड़े हो जाएगी. तुम्हारे साथ इतनी मुरौवत करूंगा कि नालिश न करूंगा?

रहमान—जो चाहे कीजिएगा. हुजूर के हाथ में ही तो हूं.

रहमान को 200 रु. के 180 रु. मिले. कुछ लिखाई कट गई, कुछ नजराना निकल

गया, कुछ दलाली में आ गया. घर आया, थोड़ा सा गुड़ रखा हुआ था, उसे बेचा और स्त्री को समझाबुझा कर माता के साथ हज को चला.

3

मियाद गुजर जाने पर लाला दाऊदयाल ने तकाजा किया. एक आदमी रहमान के घर भेज कर उसे बुलाया और कठोर स्वर से बोले—क्या अभी दो साल नहीं पूरे हुए! लाओ, रुपए कहां हैं?

रहमान ने बड़े दीन भाव से कहा—हुजूर, बड़ी गर्दिश में हूं. अम्मां जब से हज कर के आई हैं, तभी से बीमार पड़ी हुई हैं. रातदिन उन्हीं की दवादारू में दौड़ते गुजरता है. जब तक जीती हैं हुजूर, कुछ सेवा कर लूं, पेट का धंधा तो जिंदगी भर लगा रहेगा. अब की कुछ फसल नहीं हुई, हुजूर. ऊख पानी बिना सूख गई. सन खेत में पड़ेपड़े सूख गया. ढोने की मुहलत न मिली. रबी के लिए खेत जोत न सका, परती पड़े हुए हैं. अल्लाह ही जानता है, किस मुसीबत से दिन कट रहे हैं. हुजूर के रुपए कौड़ीकौड़ी अदा करूंगा, साल भर की और मुहलत दीजिए. अम्मां अच्छी हुई और मेरे सिर से बला टली.

दाऊदयाल ने कहा—32 रुपए सैकड़े ब्याज हो जाएगा.

रहमान ने जवाब दिया—जैसी हुजूर की मरजी.

रहमान यह वादा कर के घर आया, तो देखा मां का अंतिम समय आ पहुंचा है. प्राणपीड़ा हो रही है, दर्शन बदे थे, सो हो गए. मां ने बेटे को एक बार वात्सल्य दृष्टि से देखा, आशीर्वाद दिया और परलोक सिधारी. रहमान अब तक गरदन तक पानी में था, अब पानी सिर पर आ गया.

इस वक्त पड़ोसियों से कुछ उधार ले कर दफनकफन का प्रबंध किया, किंतु मृत आदमी की शांति और परितोष के लिए जकात और फातिहे की जरूरत थी, कब्र बनवानी जरूरी थी, बिरादरी का खाना, गरीबों को खैरात, कुरान की तलावत और ऐसे कितने ही संस्कार करने परमावश्यक थे.

मातृसेवा का इस के सिवा अब और कौन सा अवसर हाथ आ सकता था. माता के प्रति समस्त सांसारिक और धार्मिक कर्त्तव्यों का अंत हो रहा था. फिर तो माता की स्मृतिमात्र रह जाएगी, संकट के समय फरियाद सुनाने के लिए? मुझे खुदा ने सामर्थ्य दी होती, तो इस वक्त क्या कुछ न करता; लेकिन अब क्या अपने पड़ोसियों से भी गयागुजरा हूं!

उस ने सोचना शुरू किया, रुपए लाऊं कहां से? अब तो लाला दाऊदयाल भी न देंगे. एक बार उन के पास जा कर देखूं तो सही, कौन जाने, मेरी विपत्ति का हाल सुन कर उन्हें दया आ जाए. बड़े आदमी हैं, कृपादृष्टि हो गई, तो सौ दो सौ उन के लिए कौन बड़ी बात है.

इस भांति मन में सोचविचार करता हुआ वह लाला दाऊदयाल के पास चला. रास्ते में एकएक कदम मुश्किल से उठता था. कौन मुंह ले कर जाऊं? अभी तीन ही दिन हुए हैं, साल भर में पिछले रुपए अदा करने का वादा कर के आया हूं. अब 200 रु. और मांगूंगा, तो वह क्या कहेंगे. मैं ही उन की जगह पर होता तो कभी न देता. उन्हें जरूर संदेह होता कि यह आदमी नीयत का बुरा है. कहीं दुत्कार दिया, घुड़कियां दीं, तो? पूछें, तेरे पास ऐसी

कौन सी बड़ी जायदाद है, जिस पर रुपए की थैली दे दूं, तो क्या जवाब दूंगा? जो कुछ जायदाद है, वह यही दोनों हाथ हैं. उस के सिवा यहां क्या है? घर को कोई सेंत में भी न पूछेगा. खेत हैं, तो जमींदार के, उन पर अपना कोई काबू ही नहीं. बेकार जा रहा हूं वहां धक्के खा कर निकलना पड़ेगा, रहीसही आबरू भी मिट्टी में मिल जाएगी.

परंतु इन निराशाजनक शंकाओं के होने पर भी वह धीरेधीरे आगे बढ़ा चला जाता था, जैसे कोई अनाथ विधवा थाने फरियाद करने जा रही हो.

लाला दाऊदयाल कचहरी से आ कर अपने स्वभाव के अनुसार नौकरों पर बिगड़ रहे थे—द्वार पर पानी क्यों नहीं छिड़का, बरामदे में कुरसियां क्यों नहीं निकाल रखीं? इतने में रहमान सामने जा कर खड़ा हो गया.

लाला साहब झल्लाए तो बैठे थे रुष्ट हो कर बोले—तुम क्या करने आए हो, जी? क्यों मेरे पीछे पड़े हो. मुझे इस वक्त बातचीत करने की फुरसत नहीं है.

रहमान कुछ न बोल सका. यह डांट सुन कर इतना हताश हुआ कि उलटे पैरों लौट पड़ा. हुई न वही बात! यही सुनने तो मैं आया था? मेरी अकल पर पत्थर पड़ गए थे!

दाऊदयाल को कुछ दया आ गई. जब रहमान बरामदे के नीचे उतर गया, तो बुलाया. जरा नरम हो कर बोले—कैसे आए थे जी! क्या कुछ काम था?

रहमान—नहीं सरकार, यों ही सलाम करने चला आया था.

दाऊ.—एक कहावत है—सलामे रोस्ताई बेगरज नेस्त—किसान बिना मतलब के सलाम नहीं करता. क्या मतलब है कहो.

रहमान फूटफूट कर रोने लगा. दाऊदयाल ने अटकल से समझ लिया. इस की मां मर गई. पूछा—क्यों रहमान, तुम्हारी मां सिधार तो नहीं गईं?

रहमान—हां हुजूर, आज तीसरा दिन है.

दाऊ.—रो न, रोने से क्या फायदा? सब्र करो, ईश्वर को जो मंजूर था, वह हुआ. ऐसी मौत पर गम न करना चाहिए. तुम्हारे हाथों उन की मिट्टी ठिकाने लग गई. अब और क्या चाहिए.

रहमान—हुजूर, कुछ अरज करने आया हूं, मगर हिम्मत नहीं पड़ती. अभी पिछला ही पड़ा हुआ है, और अब किस मुंह से मांगूं? लेकिन अल्लाह जानता है, कहीं से एक पैसा मिलने की उम्मीद नहीं और काम ऐसा आ पड़ा है कि अगर न करूं, तो जिंदगी भर पछतावा रहेगा. आप से कुछ कह नहीं सकता. आगे आप मालिक हैं. यह समझ कर दीजिए कि कुएं में डाल रहा हूं. जिंदा रहूंगा तो एकएक कौड़ी मय सूद के अदा कर दूंगा. मगर इस घड़ी 'नहीं' न कीजिएगा.

दाऊ.—तीन सौ तो हो गए. दो सौ फिर मांगते हो. दो साल में कोई सात सौ रुपए हो जाएंगे. इस की खबर है या नहीं?

रहमान—गरीबपरवर! अल्लाह दे, तो दो बीघे ऊख में पांच सौ आ सकते हैं. अल्लाह ने चाहा, तो मियाद के अंदर आप की कौड़ीकौड़ी अदा कर दूंगा.

दाऊदयाल ने दो सौ रुपए फिर दे दिए. जो लोग उन के व्यवहार से परिचित थे, उन्हें उन की इस रियायत पर बड़ा आश्चर्य होता था.

खेती की हालत अनाथ बालक की सी है. जल और वायु अनुकूल हुए तो अनाज के ढेर लग गए. इन की कृपा न हुई, तो लहलहाते हुए खेत कपटी मित्र की भांति दगा दे गए. ओला और पाल, सूखा और बाढ़, टिड्डी और लाही, दीपक और आंधी से प्राण बचे तो फसल खलिहान में आई? और खलिहान से आग और बिजली दोनों ही का बैर है. इतने दुश्मनों से बची तो फसल, नहीं तो फैसला!

रहमान ने कलेजा तोड़ कर मेहनत की. दिन को दिन और रात को रात न समझा. बीबी बच्चे दिलोजान से लिपट गए. ऐसी ऊख लगी कि हाथी घुसे, तो समा जाए.

सारा गांव दांतों तले उंगली दबाता था. लोग रहमान से कहते—यार, अब की तुम्हारे पौबारह हैं. हारे दर्जे सात सौ कहीं नहीं गए. अबकी बेड़ा पार है. रहमान सोचा करता अबकी ज्यों ही गुड़ के रुपए हाथ आए. सब के सब ले जा कर लाला दाऊदयाल के कदमों पर रख दूंगा. अगर वह उस में से खुद दोचार रुपए निकाल कर देंगे, तो ले लूंगा, नहीं तो अबकी साल और चूनी चोकर खा कर काट दूंगा.

मगर भाग्य के लिखे को कौन मिटा सकता है. अगहन का महीना था; रहमान खेत की मेंड पर बैठा रखवाली कर रहा था. ओढ़ने को केवल एक पुराने गाढ़े की चादर थी, इसलिए ऊख के पत्ते जला दिए थे. सहसा हवा का एक ऐसा झोंका आया कि जलते हुए पत्ते उड़ कर खेत में जा पहुंचे. आग लग गई.

गांव के लोग आग बुझाने दौड़े; मगर आग की लपटें टूटते तारों की भांति एक हिस्से से उड़ कर दूसरे सिरे पर जा पहुंचती थीं, सारे उपाय व्यर्थ हुए. पूरा खेत जल कर राख का ढेर हो गया और खेत के साथ रहमान की सारी अभिलाषाएं नष्टभ्रष्ट हो गईं. गरीब की कमर टूट गई. दिल बैठ गया. हाथपांव ढीले हो गए. परोसी हुई थाली सामने से छिन गई.

घर आया, दाऊदयाल के रुपयों की फिक्र सिर पर सवार हुई. अपनी कुछ फिक्र न थी. बालबच्चों की भी फिक्र न थी. भूखों मरना और नंगे रहना तो किसान का काम ही है. फिक्र थी कर्ज की. दूसरा साल बीत रहा है.

दोचार दिन में लाला दाऊदयाल का आदमी आता होगा. उसे कौन मुंह दिखाऊंगा? चल कर उन्हीं से चिरौरी करूं कि साल भर की मुहलत और दीजिए. लेकिन साल भर में तो सात सौ के नौ सौ हो जाएंगे. कहीं नालिश कर दी, तो हजार ही समझो. साल भर में ऐसी क्या हुन बरस जाएगी. बेचारे कितने भले आदमी हैं, दो सौ रुपए उठा कर दे दिया. खेत भी तो ऐसा नहीं कि बै-रिहन कर के आबरू बचाऊं. बैल भी ऐसे कौन से तैयार हैं कि दोचार सौ मिल जाएं. आधे भी तो नहीं रहे. अब इज्जत खुदा के हाथ है. मैं तो अपनी सी कर के देख चुका.

सुबह का वक्त था. वह अपने खेत की मेंड़ पर खड़ा अपनी तबाही का दृश्य देख रहा था. देखा, दाऊदयाल का चपरासी कंधे पर लट्ठ रखे चला आ रहा है. प्राण सूख गए. खुदा, अब तू ही इस मुश्किल को आसान कर. कहीं आते ही आते गालियां न देने लगे. या अल्लाह कहां छिप जाऊं?

चपरासी ने समीप आ कर कहा—रुपए ले कर देना नहीं चाहते? मियाद कल गुजर गई. जानते हो न सरकार को? एक दिन की भी देर हुई और उन्होंने नालिश ठोकी. बेभाव की पड़ेगी.

रहमान कांप उठा. बोला—यहां का हाल तो देख रहे हो न?

चपरासी—यहां हालहवाल सुनने का काम नहीं. ये चकमे किसी और को देना. सात सौ रुपए ले चलो और चुपके से गिन कर चले आओ.

रहमान—जमादार, सारी ऊख जल गई. अल्लाह जानता है, अब की कौड़ीकौड़ी बेवाक कर देता.

चपरासी—मैं यह कुछ नहीं जानता. तुम्हारी ऊख का किसी ने ठेका नहीं लिया. अभी चलो सरकार बुला रहे हैं.

यह कह कर चपरासी उस का हाथ पकड़ कर घसीटता हुआ चला. गरीब को घर में जा कर पगड़ी बांधने का मौका न दिया.

5

पांच कोस का रास्ता कट गया, और रहमान ने एक बार भी सिर न उठाया. बस, रहरह कर 'या अली मुश्किलकुशा!' उस के मुंह से निकल जाता था. उसे अब इस नाम का भरोसा था. यही जप हिम्मत को संभाले हुए था, नहीं तो शायद वह वहीं गिर पड़ता. वह नैराश्य की उस दशा को पहुंच गया था, जब मनुष्य की चेतना नहीं उपचेतना शासन करती है.

दाऊदयाल द्वार पर टहल रहे थे. रहमान जा कर उन के कदमों पर गिर पड़ा और बोला—खुदावंद, बड़ी बिपत पड़ी हुई है. अल्लाह जानता है कहीं का नहीं रहा.

दाऊ.—क्या सब ऊख जल गई?

रहमान—हुजूर सुन चुके हैं क्या? सरकार, जैसे किसी ने खेत में झाड़ू लगा दी हो. गांव के ऊपर ऊख लगी हुई थी गरीबपरवर, यह दैवी आफत न पड़ी होती, तो और तो नहीं कह सकता. हुजूर से उरिन हो जाता.

दाऊ.—अब क्या सलाह है? देते हो या नालिश कर दूं?

रहमान—हुजूर मालिक हैं, जो चाहें करें. मैं तो इतना ही जानता हूं कि हुजूर के रुपए सिर पर हैं और मुझे कौड़ीकौड़ी देनी है. अपनी सोची नहीं होती. दो बार वादे किए, दोनों बार झूठा पड़ा. अब वादा न करूंगा जब जो कुछ मिलेगा, ला कर हुजूर के कदमों पर रख दूंगा. मिहनतमजूरी से, पेट और तन काट कर, जिस तरह हो सकेगा आप के रुपए भरूंगा.

दाऊदयाल ने मुसकरा कर कहा—तुम्हारे मन में इस वक्त सब से बड़ी कौन सी आरजू है?

रहमान—यही हुजूर, कि आप के रुपए अदा हो जाएं. सच कहता हूं हुजूर, अल्लाह जानता है.

दाऊ.—अच्छा तो समझ लो कि मेरे रुपए अदा हो गए.

रहमान—अरे हुजूर, यह कैसे समझ लूं! यहां न दूंगा, तो वहां तो देने पड़ेंगे.

दाऊ.—नहीं रहमान, अब इस की फिक्र मत करो. मैं तुम्हें आजमाता था.

रहमान—सरकार, ऐसा न कहें. इतना बोझ सिर पर ले कर न मरूंगा.

दाऊ.—कैसा बोझ जी, मेरा तुम्हारे ऊपर कुछ आता ही नहीं. अगर कुछ आता भी हो तो मैं ने माफ कर दिया; यहां भी, वहां भी. अब तुम मेरे एक पैसे के भी देनदार नहीं हो.

असल में मैं ने तुम से जो कर्ज लिया था, वही अदा कर रहा हूं.

—मैं तुम्हारा कर्जदार हूं, तुम मेरे कर्जदार नहीं हो. तुम्हारी गऊ अब तक मेरे पास है. उस ने मुझे कम से कम आठ सौ रुपए का दूध दिया है! दो बछड़े नफे में अलग. अगर तुम ने यह गऊ कसाइयों को दे दी होती, तो मुझे इतना फायदा क्यों कर होता?

—तुम ने उस वक्त पांच रुपए का नुकसान उठा कर गऊ मेरे हाथ बेची थी. वह शराफत मुझे याद है. उस एहसान का बदला चुकाना मेरी ताकत से बाहर है. जब तुम इतने गरीब और नादान हो कर एक गऊ की जान के लिए पांच रुपए का नुकसान उठा सकते हो, तो मैं तुम्हारी सौ गुनी हैसियत रख कर अगर चारपांच सौ रुपए माफ कर देता हूं, तो कोई बड़ा काम नहीं कर रहा हूं.

—तुम ने भले ही जान कर मेरे ऊपर कोई एहसान न किया हो, पर असल में वह मेरे धर्म पर एहसान था. मैं ने भी तो तुम्हें धर्म के काम ही के लिए रुपए दिए थे. बस हम तुम दोनों बराबर हो गए. तुम्हारे दोनों बछड़े मेरे यहां हैं, जी चाहे लेते जाओ, तुम्हारी खेती में काम आएंगे. तुम सच्चे और शरीफ आदमी हो, मैं तुम्हारी मदद करने को हमेशा तैयार रहूंगा. इस वक्त भी तुम्हें रुपए की जरूरत हो, तो जितने चाहो, ले सकते हो.

रहमान को ऐसा मालूम हुआ कि उस के सामने कोई फरिश्ता बैठा हुआ है. मनुष्य उदार हो, तो फरिश्ता है; और नीच हो, तो शैतान, ये दोनों मानवी वृत्तियों ही के नाम हैं. रहमान के मुंह से धन्यवाद के शब्द भी न निकल सके. बड़ी मुश्किल से आंसुओं को रोक कर बोला—हुजूर को इस नेकी का बदला खुदा देगा. मैं तो आज से अपने को आप का गुलाम ही समझूंगा.

दाऊ.—नहीं जी तुम मेरे दोस्त हो.

रहमान—नहीं हुजूर, गुलाम.

दाऊ.—गुलाम छुटकारा पाने के लिए जो रुपए देता है, उसे मुक्तिधन कहते हैं. तुम बहुत पहले 'मुक्तिधन' अदा कर चुके. अब भूल कर भी यह शब्द मुंह से न निकालना.

बहिष्कार

पंडित ज्ञानचंद्र ने गोविंदी की ओर सतृष्ण नेत्रों से देख कर कहा—मुझे ऐसे निर्दयी प्राणियों से जरा भी सहानुभूति नहीं है. इस बर्बरता की भी कोई हद है कि जिस के साथ तीन वर्ष तक जीवन के सुख भोगे, उसे एक जरा सी बात पर घर से निकाल दिया.

गोविंदी ने आंखें नीची कर के पूछा—आखिर क्या बात हुई थी?

ज्ञान.—कुछ भी नहीं. ऐसी बातों में कोई बात होती है. शिकायत है कि कालिंदी जबान की तेज है. तीन साल तक जबान तेज न थी, आज जबान की तेज हो गई. कुछ नहीं, कोई दूसरी चिड़िया नजर आई होगी. उस के लिए पिंजरे को खाली करना आवश्यक था. बस यह शिकायत निकल आई. मेरा बस चले, तो ऐसे दुष्टों को गोली मार दूं. मुझे कई बार कालिंदी से बातचीत करने का अवसर मिला है. मैं ने ऐसी हंसमुख दूसरी स्त्री ही नहीं देखी.

गोविंदी—तुम ने सोमदत्त को समझाया नहीं.

ज्ञान.—ऐसे लोग समझाने से नहीं मानते. यह लात का आदमी है, बातों की उसे क्या परवा? मेरा तो यह विचार है कि जिस से एक बार संबंध हो गया, फिर चाहे वह अच्छी हो या बुरी, उस के साथ जीवन भर निर्वाह करना चाहिए! मैं तो कहता हूं, अगर स्त्री के कुल में कोई दोष भी निकल आए, तो क्षमा से काम लेना चाहिए.

गोविंदी ने कातर नेत्रों से देख कर कहा—ऐसे आदमी तो बहुत कम होते हैं.

ज्ञान.—समझ ही में नहीं आता कि जिस के साथ इतने दिन हंसे बोले, जिस के प्रेम की स्मृतियां हृदय के एकएक अणु में समाई हुई हैं, उसे दरदर की ठोकरें खाने को कैसे छोड़ दिया. कम से कम इतना तो करना चाहिए था कि उसे किसी सुरक्षित स्थान पर पहुंचा देते और उस के निर्वाह का कोई प्रबंध कर देते.

—निर्दयी ने इस तरह घर से निकाला, जैसे कोई कुत्ते को निकाले. बेचारी गांव के बाहर बैठी रो रही है. कौन कह सकता है, कहां जाएगी. शायद मायके भी कोई नहीं रहा. सोमदत्त के डर के मारे गांव का कोई आदमी उस के पास भी नहीं आता. ऐसे बग्गड़ का क्या ठिकाना! जो आदमी स्त्री का न हुआ, वह दूसरे का क्या होगा.

—उस की दशा देख कर मेरी आंखों में तो आंसू भर आए. जी में तो आया, कहूं—बहन, तुम मेरे घर चलो; मगर तब तो सोमदत्त मेरे प्राणों का गाहक हो जाता.

गोविंदी—तुम जरा जा कर एक बार फिर समझाओ. अगर वह किसी तरह न माने, तो कालिंदी को लेते आना.

ज्ञान.—जाऊं?

गोविंदी—हां, अवश्य जाओ; अगर सोमदत्त कुछ खारीखोटी भी कहे, तो सुन लेना.

ज्ञानचंद्र ने गोविंदी को गले लगा कर कहा—तुम्हारे हृदय में बड़ी दया है, गोविंदी! लो जाता हूं, अगर सोमदत्त ने न माना तो कालिंदी ही को लेता आऊंगा. अभी बहुत दूर न गई होगी.

2

तीन वर्ष बीत गए. गोविंदी एक बच्चे की मां हो गई. कालिंदी अभी तक इसी घर में है. उस के पति ने दूसरा विवाह कर लिया है. गोविंदी और कालिंदी में बहनों का सा प्रेम है.

गोविंदी सदैव उस की दिलजोई करती रहती है. वह इस की कल्पना भी नहीं करती कि यह कोई गैर है और मेरी रोटियों पर पड़ी हुई है; लेकिन सोमदत्त को कालिंदी का यहां रहना एक आंख नहीं भाता. वह कोई कानूनी कार्रवाई करने की तो हिम्मत नहीं रखता और इस परिस्थिति में कर ही क्या सकता है; लेकिन ज्ञानचंद का सिर नीचा करने के लिए अवसर खोजता रहता है.

संध्या का समय था. ग्रीष्म की उष्ण वायु अभी तक बिलकुल शांत नहीं हुई थी. गोविंदी गंगाजल भरने गई थी. और जल तट की शीतल निर्जनता का आनंद उठा रही थी.

सहसा उसे सोमदत्त आता हुआ दिखाई दिया. गोविंदी ने आंचल से मुंह छिपा लिया और कलसा ले कर चलने को ही थी कि सोमदत्त ने सामने आ कर कहा—जरा ठहरो, गोविंदी, तुम से एक बात कहनी है. तुम से यह पूछना चाहता हूं कि तुम से कहूं या ज्ञानू से?

गोविंदी ने धीरे से कहा—उन्हीं से कह दीजिए.

सोम.—जी तो मेरा भी यही चाहता है; लेकिन तुम्हारी दीनता पर दया आती है. जिस दिन मैं ज्ञानचंद्र से यह बात कह दूंगा, तुम्हें इस घर से निकलना पड़ेगा. मैं ने सारी बातों का पता चला लिया है. तुम्हारा बाप कौन था; तुम्हारी मां की क्या दशा हुई, यह सारी कथा जानता हूं. क्या तुम समझती हो कि ज्ञानचंद्र यह कथा सुन कर तुम्हें अपने घर में रखेगा? उस के विचार कितने ही स्वाधीन हों; पर जीती मक्खी नहीं निगल सकता.

गोविंदी ने थरथर कांपते हुए कहा—जब आप मेरी सारी बातें जानते हैं, तो मैं क्या कहूं? आप जैसा उचित समझें करें; लेकिन मैं ने तो आप के साथ कभी कोई बुराई नहीं की.

सोम.—तुम लोगों ने गांव में मुझे कहीं मुंह दिखाने योग्य नहीं रखा. तिस पर कहती हो, मैं ने तुम्हारे साथ कोई बुराई नहीं की! तीन साल से कालिंदी को आश्रय दे कर मेरी आत्मा को जो कष्ट पहुंचाया है, वह मैं जानता हूं. तीन साल से मैं इस फिक्र में था कि कैसे इस अपमान का दंड दूं. अब वह अवसर पा कर उसे किसी तरह नहीं छोड़ सकता.

गोविंदी—अगर आप की यही इच्छा है कि मैं यहां न रहूं, तो मैं चली जाऊंगी, आज ही चली जाऊंगी; लेकिन उन से आप कुछ न कहिए. आप के पैरों पड़ती हूं.

सोम.—कहां चली जाओगी?

गोविंदी—और कहीं ठिकाना नहीं है, तो गंगा जी तो हैं.

सोम.—नहीं गोविंदी, मैं इतना निर्दयी नहीं हूं. मैं केवल इतना चाहता हूं कि तुम कालिंदी को अपने घर से निकाल दो और मैं कुछ नहीं चाहता. तीन दिन का समय देता हूं, खूब सोचविचार लो. अगर कालिंदी तीसरे दिन तुम्हारे घर से न निकली, तो तुम जानोगी.

सोमदत्त वहां से चला गया. गोविंदी कलसा लिए मूर्ति की भांति खड़ी रह गई. उस के सम्मुख कठिन समस्या आ खड़ी हुई थी, वह थी कालिंदी. घर में एक ही रह सकती थी. दोनों के लिए उस घर में स्थान न था. क्या कालिंदी के लिए वह अपना घर, अपना स्वर्ग त्याग देगी? कालिंदी अकेली है, पति ने उसे पहले ही छोड़ दिया है, वह जहां चाहे जा सकती है, पर वह अपने प्राणाधार और प्यारे बच्चे को छोड़ कर कहां जाएगी?

लेकिन कालिंदी से वह क्या कहेगी? जिस के साथ इतने दिनों तक बहनों की तरह रही, उसे क्या वह अपने घर से निकाल देगी? उस का बच्चा कालिंदी से कितना हिला हुआ था, कालिंदी उसे कितना चाहती थी? क्या उस परित्यक्ता दीना को वह अपने घर से निकाल देगी?

इस के सिवा और उपाय ही क्या था? उस का जीवन अब एक स्वार्थी, दंभी व्यक्ति की दया पर अवलंबित था. क्या अपने पति के प्रेम पर वह भरोसा कर सकती थी! ज्ञानचंद्र सहृदय थे, उदार थे, विचारशील थे, दृढ़ थे, पर क्या उन का प्रेम अपमान, व्यंग्य और बहिष्कार जैसे आघातों को सहन कर सकता था!

3

उसी दिन से गोविंदी और कालिंदी में कुछ पार्थक्य सा दिखाई देने लगा. दोनों अब बहुत कम साथ बैठतीं. कालिंदी पुकारती—बहन, आ कर खाना खा लो.

गोविंदी कहती—तुम खा लो, मैं फिर खा लूंगी.

पहले कालिंदी बालक को सारे दिन खिलाया करती थी, मां के पास केवल दूध पीने जाता था. मगर अब गोविंदी हर दम उसे अपने ही पास रखती है. दोनों के बीच में कोई दीवार खड़ी हो गई है.

कालिंदी बारबार सोचती है, आजकल मुझ से यह क्यों रूठी हुई है? पर उसे कोई कारण नहीं दिखाई देता. उसे भय हो रहा है कि कदाचित यह अब मुझे यहां नहीं रखना चाहती.

इसी चिंता में वह गोते खाया करती है; किंतु गोविंदी भी उस से कम चिंतित नहीं है. कालिंदी से वह स्नेह तोड़ना चाहती है; पर उस की म्लान मूर्ति देख कर उस के हृदय के टुकड़े हो जाते हैं. उस से कुछ कह नहीं सकती. अवहेलना के शब्द मुंह से नहीं निकलते. कदाचित उसे घर से जाते देख कर वह रो पड़ेगी और जबरदस्ती रोक लेगी.

इसी हैसबैस में तीन दिन गुजर गए. कालिंदी घर से न निकली. तीसरे दिन संध्या समय सोमदत्त नदी के तट पर बड़ी देर तक खड़ा रहा. अंत को चारों ओर अंधेरा छा गया. फिर भी पीछे फिरफिर कर जलतट की ओर देखता जाता था.

रात के दस बज गए हैं. अभी ज्ञानचंद्र घर नहीं आए. गोविंदी घबरा रही है. उन्हें इतनी देर तो कभी नहीं होती थी. आज इतनी देर कहां लगा रहे हैं? शंका से उस का हृदय कांप रहा है.

सहसा मरदाने कमरे का द्वार खुलने की आवाज आई! गोविंदी दौड़ी हुई बैठक में आई; लेकिन पति का मुख देखते ही उस की सारी देह शिथिल पड़ गई, उस मुख पर हास्य था; पर उस हास्य में भाग्य तिरस्कार झलक रहा था. विधि वाम ने ऐसे सीधेसादे मनुष्य

को भी अपने क्रीड़ाकौशल के लिए चुन लिया. क्या वह रहस्य रोने के योग्य था? रहस्य रोने की वस्तु नहीं, हंसने की वस्तु है.

ज्ञानचंद्र ने गोविंदी की ओर नहीं देखा. कपड़े उतार कर सावधानी से अलगनी पर रखे, जूता उतारा और फर्श पर बैठ कर एक पुस्तक के पन्ने उलटने लगा.

गोविंदी ने डरतेडरते कहा—आज इतनी देर कहां की? भोजन ठंडा हो रहा है.

ज्ञानचंद्र ने फर्श की ओर ताकते हुए कहा—तुम लोग भोजन कर लो, मैं एक मित्र के घर खा कर आया हूं.

गोविंदी इस का आशय समझ गई. एक क्षण के बाद फिर बोली—चलो, थोड़ा सा ही खा लो.

ज्ञान.—अब बिलकुल भूख नहीं है.

गोविंदी—तो मैं भी जा कर सो रहती हूं.

ज्ञानचंद्र ने अब गोविंदी की ओर देख कर कहा—क्यों? तुम क्यों न खाओगी?

वह और कुछ न कह सकी. गला भर आया.

ज्ञानचंद्र ने समीप आ कर कहा—मैं सच कहता हूं, गोविंदी, एक मित्र के घर भोजन कर आया हूं, तुम जा कर खा लो.

4

गोविंदी पलंग पर पड़ी हुई चिंता, नैराश्य और विषाद के अपार सागर में गोते खा रही थी. यदि कालिंदी का उस ने बहिष्कार कर दिया होता, तो आज उसे इस विपत्ति का सामना न करना पड़ता; किंतु यह अमानुषिक व्यवहार उस के लिए असाध्य था और इस दशा में भी उसे इस का दुख न था. ज्ञानचंद्र की ओर से यों तिरस्कृत होने का भी उसे दुख न था.

जो ज्ञानचंद्र नित्य धर्म और सज्जनता की डींगें मारा करता था, वही आज इस का इतनी निर्दयता से बहिष्कार करता हुआ जान पड़ता था, उस पर उसे लेशमात्र भी दुख, क्रोध या द्वेष न था. उस के मन को केवल एक ही भावना आंदोलित कर रही थी. वह अब इस घर में कैसे रह सकती है. अब तक वह इस घर की स्वामिनी थी! इसलिए न कि वह अपने पति के प्रेम की स्वामिनी थी; पर अब वह प्रेम से वंचित हो गई थी.

अब इस घर पर उस का क्या अधिकार था? वह अब अपने पति को मुंह कैसे दिखा सकती थी. वह जानती थी, ज्ञानचंद्र अपने मुंह से उस के विरुद्ध एक शब्द भी न निकालेंगे; पर उस के विषय में ऐसी बातें जान कर क्या वह उस से प्रेम कर सकते थे? कदापि नहीं! इस वक्त न जाने क्या समझ कर चुप रहे. सबेरे तूफान उठेगा. कितने ही विचारशील हों; पर अपने समाज से निकल जाना कौन पसंद करेगा?

स्त्रियों की संसार में कमी नहीं. मेरी जगह हजारों मिल जाएंगी. मेरी किसी को क्या परवा? अब यहां रहना बेहयाई है. आखिर कोई लाठी मार कर थोड़े ही निकाल देगा. हयादार के लिए आंख का इशारा बहुत है. मुंह से न कहें, मन की बात और भाव छिपे नहीं रहते; लेकिन मीठी निद्रा की गोद में सोए हुए शिशु को देख कर ममता ने उस के अशक्त हृदय को और भी कातर कर दिया. इस अपने प्राणों के आधार को वह कैसे छोड़ेगी?

शिशु को उस ने गोद में उठा लिया और खड़ी रोती रही. तीन साल कितने आनंद से गुजरे. उस ने समझा था कि इसी भांति सारा जीवन कट जाएगा; लेकिन उस के भाग्य में इस से अधिक सुख भोगना लिखा ही न था.

करुण वेदना में डूबे हुए ये शब्द उस के मुख से निकल आए—भगवान! अगर तुम्हें इस भांति मेरी दुर्गति करनी थी, तो तीन साल पहले क्यों न की? उस वक्त यदि तुम ने मेरे जीवन का अंत कर दिया होता, तो मैं तुम्हें धन्यवाद देती. तीन साल बाद इस उद्यान ही को उजाड़ दिया.

हां! जिस पौधे को उस ने अपने प्रेम जल से सींचा था, वे अब निर्मम दुर्भाग्य के पैरों तले कितनी निष्ठुरता से कुचले जा रहे थे. ज्ञानचंद्र के शील और स्नेह का स्मरण आया, तो वह रो पड़ी. मृदु स्मृतियां आआ कर हृदय को मसोसने लगीं.

सहसा ज्ञानचंद्र के आने से वह संभल बैठी. कठोर से कठोर बातें सुनने के लिए उस ने अपने हृदय को कड़ा कर लिया; किंतु ज्ञानचंद्र के मुख पर रोष का चिह्न भी न था. उन्होंने आश्चर्य से पूछा—क्या तुम अभी तक सोई नहीं? जानती हो, कै बजे हैं? बारह से ऊपर हैं.

गोविंदी ने सहमते हुए कहा—तुम भी तो अभी नहीं सोए.

ज्ञान.—मैं न सोऊं, तो तुम भी न सोओ? मैं न खाऊं, तो तुम भी न खाओ? मैं बीमार पड़ू तो तुम भी बीमार पड़ो? यह क्यों? मैं तो एक जन्मपत्री बना रहा था. कल देनी होगी. तुम क्या करती रहीं, बोलो?

इन शब्दों में कितना सरल स्नेह था! क्या तिरस्कार के भाव इतने ललित शब्दों में प्रकट हो सकते हैं? प्रवंचकता क्या इतनी निर्मल हो सकती है? शायद सोमदत्त ने अभी वज्र का प्रहार नहीं किया. अवकाश न मिला होगा; लेकिन ऐसा है, तो आज घर इतनी देर में क्यों आए? भोजन क्यों न किया, मुझ से बोले तक नहीं, आंखें लाल हो रही थीं. मेरी ओर आंख उठा कर देखा तक नहीं.

क्या यह संभव है कि उन का क्रोध शांत हो गया हो? यह संभावना की चरम सीमा से भी बाहर है. तो क्या सोमदत्त को मुझ पर दया आ गई? पत्थर पर दूब जमी?

गोविंदी कुछ निश्चय न कर सकी, और जिस भांति गृहसुख विहीन पथिक वृक्ष की छांह में भी आनंद से पांव फैला कर सोता है, उस की अव्यवस्था ही उसे निश्चिंत बना देती है, उसी भांति गोविंदी मानसिक व्यग्रता में भी स्वस्थ हो गई. मुसकरा कर स्नेह मृदुल स्वर में बोली—तुम्हारी ही राह तो देख रही थी.

यह कहतेकहते गोविंदी का गला भर आया. व्याध के जाल में फड़फड़ाती हुई चिड़िया क्या मीठे राग गा सकती है?

ज्ञानचंद्र ने चारपाई पर बैठ कर कहा—झूठी बात, रोज तो तुम अब तक सो जाया करती थीं.

5

एक सप्ताह बीत गया; पर ज्ञानचंद्र ने गोविंदी से कुछ न पूछा, और न उन के बर्ताव ही से उन के मनोगत भावों का कुछ परिचय मिला. अगर उन के व्यवहारों में कोई नवीनता थी, तो यह कि वह पहले से भी ज्यादा स्नेहशील, निर्द्वंद्व और प्रफुल्लवदन हो गए.

गोविंदी का इतना आदर और मान उन्होंने कभी नहीं किया था. उन के प्रयत्नशील रहने पर भी गाविंदी उन के मनोभावों को ताड़ रही थी और उस का चित्त प्रतिक्षण शंका से चंचल और क्षुब्ध रहता था. अब उसे इस में लेशमात्र भी संदेह नहीं था कि सोमदत्त ने आग लगा दी है.

गीली लकड़ी में पड़ कर वह चिनगारी बुझ जाएगी, या जंगल की सूखी पत्तियां हाहाकार कर के जल उठेंगी, यह कौन जान सकता है. लेकिन इस सप्ताह के गुजरते ही अग्नि का प्रकोप होने लगा.

ज्ञानचंद्र एक महाजन के मुनीम थे. उस महाजन ने कह दिया—मेरे यहां अब आप का काम नहीं.

जीविका का दूसरा साधन यजमानी है. यजमान भी एकएक कर के उन्हें जवाब देने लगे. यहां तक कि उन के द्वार पर आनाजाना बंद हो गया. आग सूखी पत्तियों में लग कर अब हरे वृक्ष के चारों ओर मंडराने लगी. पर ज्ञानचंद्र के मुख में गोविंदी के प्रति एक भी कटु, अमृदु शब्द न था. वह इस सामाजिक दंड की शायद कुछ परवा न करते, यदि दुर्भाग्यवश इस ने उस की जीविका के द्वार न बंद कर दिए होते.

गोविंदी सब कुछ समझती थी; पर संकोच के मारे कुछ न कह सकती थी. उसी के कारण उस के प्राणप्रिय पति की यह दशा हो रही है, यह उस के लिए डूब मरने की बात थी. पर कैसे प्राणों का उत्सर्ग करे. कैसे जीवन मोह से मुक्त हो. इस विपत्ति में स्वामी के प्रति उस के रोमरोम से शुभ कामनाओं की सरिता सी बहती थी; पर मुंह से एक शब्द भी न निकलता था.

भाग्य की सब से निष्ठुर लीला उस दिन हुई, जब कालिंदी भी बिना कुछ कहेसुने सोमदत्त के घर पहुंची. जिस के लिए ये सारी यातनाएं झेलनी पड़ीं, उसी ने अंत में बेवफाई की. ज्ञानचंद्र ने सुना, तो केवल मुसकरा दिए; पर गोविंदी इस कुटिल आघात को इतनी शांति से सहन न कर सकी.

कालिंदी के प्रति उस के मुख से अप्रिय शब्द निकल ही आए. ज्ञानचंद्र ने कहा—उसे व्यर्थ ही कोसती हो प्रिये, उस का कोई दोष नहीं. भगवान हमारी परीक्षा ले रहे हैं. इस वक्त धैर्य के सिवा हमें किसी से कोई आशा न रखनी चाहिए.

जिन भावों को गोविंदी कई दिनों से अंतस्तल में दबाती चली आती थी, वे धैर्य का बांध टूटते ही बड़े वेग से बाहर निकल पड़े.

पति के सम्मुख अपराधियों की भांति हाथ बांध कर उस ने कहा—स्वामी, मेरे ही कारण आप को यह सारे पापड़ बेलने पड़ रहे हैं. मैं ही आप के कुल की कलंकिनी हूं. क्यों न मुझे किसी ऐसी जगह भेज दीजिए, जहां कोई मेरी सूरत तक न देखे. मैं आप से सत्य कहती हूं…

ज्ञानचंद्र ने गोविंदी को और कुछ न कहने दिया. उसे हृदय से लगा कर बोले—प्रिय, ऐसी बातों से मुझे दुखी न करो. तुम आज भी उतनी ही पवित्र हो, जितनी उस समय थीं, जब देवताओं के समक्ष मैं ने आजीवन पत्नीव्रत लिया था, तब मुझ से तुम्हारा परिचय न था. अब तो मेरी देह और आत्मा का एकएक परमाणु तुम्हारे अक्षय प्रेम से आलोकित हो रहा है. उपहास और निंदा की तो बात ही क्या है, दुर्दैव का कठोरतम आघात भी मेरे व्रत

को भंग नहीं कर सकता. अगर डूबेंगे तो साथसाथ डूबेंगे; तैरेंगे तो साथसाथ तैरेंगे. मेरे जीवन का मुख्य कर्त्तव्य तुम्हारे प्रति है. संसार इस के पीछे—बहुत पीछे है.

गोविंदी को जान पड़ा, उस के सम्मुख कोई देवमूर्ति खड़ी है. स्वामी में इतनी श्रद्धा; इतनी भक्ति, उसे आज तक कभी न हुई थी. गर्व से उस का मस्तक ऊंचा हो गया और मुख पर स्वर्गीय आभा झलक पड़ी. उस ने फिर कहने का साहस न किया.

6

संपन्नता अपमान और बहिष्कार को तुच्छ समझती है. उन के अभाव में ये बाधाएं प्राणांतक हो जाती हैं. ज्ञानचंद्र दिन के दिन घर में पड़े रहते. घर से बाहर निकलने का उन्हें साहस न होता था.

जब तक गोविंदी के पास गहने थे, तब तक भोजन की चिंता न थी. किंतु जब यह आधार भी न रह गया, तो हालत और भी खराब हो गई. कभीकभी निराहार रह जाना पड़ता. अपनी व्यथा किस से कहें, कौन मित्र था, कौन अपना था?

गोविंदी पहले भी हृष्टपुष्ट न थी; पर अब तो अनाहार और अंतर्वेदना के कारण उस की देह और भी जीर्ण हो गई थी. पहले शिशु के लिए दूध मोल लिया करती थी. अब इस की सामर्थ्य न थी. बालक दिन पर दिन दुर्बल होता जाता था. मालूम होता था, उसे सूखे का रोग हो गया है. दिन के दिन बच्चा खुर्रा खाट पर पड़ा माता को नैराश्य दृष्टि से देखा करता.

कदाचित उस की बाल बुद्धि भी अवस्था को समझती थी. कभी किसी वस्तु के लिए हठ न करता. उस की बालोचित सरलता, चंचलता और क्रीड़ाशीलता ने अब तक दीर्घ, आशा विहीन प्रतीक्षा का रूप धारण कर लिया था. मातापिता उस की दशा देख कर मन ही मन कुढ़कुढ़ कर रह जाते थे.

संध्या का समय था. गोविंदी अंधेरे घर में बालक के सिरहाने चिंता में मग्न बैठी थी. आकाश पर बादल छाए हुए थे और हवा के झोंके उस के अर्द्धनग्न शरीर में शर के समान लगते थे.

आज दिन भर बच्चे ने कुछ न खाया था. घर में कुछ था ही नहीं. क्षुधाग्नि से बालक छटपटा रहा था; पर या तो रोना चाहता था, या उस में रोने की शक्ति ही न थी.

इतने में ज्ञानचंद्र तेली के यहां से तेल ले कर आ पहुंचे. दीपक जला. दीपक के क्षीण प्रकाश में माता ने बालक का मुख देखा; तो सहम उठी. बालक का मुख पीला पड़ गया था और पुतलियां चढ़ गई थीं. उस ने घबरा कर बालक को गोद में उठाया. देह ठंडी थी. चिल्ला कर बोली—हा भगवान! मेरे बच्चे को क्या हो गया?

ज्ञानचंद्र ने बालक के मुख की ओर देख कर एक ठंडी सांस ली और बोले—ईश्वर, क्या सारी दया दृष्टि हमारे ही ऊपर करोगे?

गोविंदी—हाय! मेरा लाल मारे भूख के शिथिल हो गया है. कोई ऐसा नहीं, जो इसे दो घूंट दूध पिला दे.

यह कह कर उस ने बालक को पति की गोद में दे दिया और एक लुटिया ले कर कालिंदी के घर दूध मांगने चली. जिस कालिंदी ने आज छह महीने से इस घर की ओर

ताका न था, उसी के द्वार पर दूध की भिक्षा मांगने जाते हुए उसे कितनी ग्लानि, कितना संकोच हो रहा था, वह भगवान के सिवा और कौन जान सकता है.

यह वही बालक है, जिस पर एक दिन कालिंदी प्राण देती थी; पर उस की ओर से अब उस ने अपना हृदय उतना कठोर कर लिया था कि घर में गौएं लगने पर भी एक चिल्लू दूध न भेजा. उसी की दयाभिक्षा मांगने आज, अंधेरी रात में, भीगती हुई गोविंदी दौड़ी जा रही थी. माता! तेरे वात्सल्य को धन्य है!

कालिंदी दीपक लिए दालान में खड़ी गाय दुहा रही थी. पहले स्वामिनी बनने के लिए वह सौत से लड़ा करती थी. सेविका का पद उसे स्वीकार न था. अब सेविका का पद स्वीकार कर के स्वामिनी बनी हुई थी. गोविंदी को देख कर तुरंत निकल आई और विस्मय से बोली—क्या है बहन, पानीबूंदी में कैसे चली आई?

गोविंदी ने सकुचाते हुए कहा—लाला बहुत भूखा है, कालिंदी! आज दिन भर कुछ नहीं मिला. थोड़ा सा दूध लेने आई हूं.

कालिंदी भीतर जा कर दूध का मटका लिए बाहर निकल आई और बोली—जितना चाहो, ले लो गोविंदी! दूध की कौन कमी है. लाला तो अब चलता होगा! बहुत जी चाहता है कि जा कर उसे देख आऊं. लेकिन जाने का हुकुम नहीं है. पेट पालना है, तो हुकुम मानना ही पड़ेगा. तुम ने बतलाया ही नहीं, नहीं तो लाला के लिए दूध का तोड़ा थोड़ा है. मैं चली क्या आई कि तुम ने उस का मुंह देखने को तरसा डाला. मुझे कभी पूछता है?

यह कहते हुए कालिंदी ने दूध का मटका गोविंदी के हाथ में रख दिया. गोविंदी की आंखों से आंसू बहने लगे. कालिंदी इतनी दया करेगी, इस की उसे आशा नहीं थी. अब उसे ज्ञान हुआ कि वही दयाशील, सेवापरायण रमणी है, जो पहले थी. लेशमात्र भी अंतर न था. बोली—इतना दूध ले कर क्या करूंगी, बहन. इस लोटिया में डाल दो.

कालिंदी—दूध छोटेबड़े सभी पीते हैं. ले जाओ, (धीरे) यह मत समझो कि मैं तुम्हारे घर से चली आई; तो बिरानी हो गई. भगवान की दया से अब यहां किसी बात की चिंता नहीं है. मुझ से कहने भर की देर है. हां, मैं आऊंगी नहीं. इस से लाचार हूं. कल किसी बेला लाला को ले कर नदी किनारे आ जाना. देखने को बहुत जी चाहता है.

गोविंदी दूध की हांडी लिए घर चली, गर्व पूर्ण आनंद के मारे उस के पैर उड़े जाते थे. ड्योढ़ी में पैर रखते ही बोली—जरा दीया दिखा देना, यहां कुछ सुझाई नहीं देता. ऐसा न हो कि दूध गिर पड़े.

ज्ञानचंद्र ने दीपक दिखा दिया. गोविंदी ने बालक को अपनी गोद में लेटा कर कटोरी से दूध पिलाना चाहा! पर एक घूंट से अधिक दूध कंठ से न गया. बालक ने हिचकी ली और अपनी जीवन लीला समाप्त कर दी.

करुण रोदन से घर गूंज उठा. सारी बस्ती के लोग चौंक पड़े; पर जब मालूम हो गया कि ज्ञानचंद्र के घर से आवाज आ रही है, तो कोई द्वार पर न आया. रात भर भग्न हृदय दंपती रोते रहे. प्रातःकाल ज्ञानचंद्र ने शव उठा लिया और श्मशान की ओर चले. सैकड़ों आदमियों ने उन्हें जाते देखा; पर कोई समीप न आया.

कुल मर्यादा संसार की सब से उत्तम वस्तु है. उस पर प्राण तक न्योछावर कर दिए जाते हैं. ज्ञानचंद्र के हाथ से वह वस्तु निकल गई, जिस पर उन्हें गौरव था. वह गर्व, वह आत्मबल, वह तेज, जो परंपरा ने उन के हृदय में कूटकूट कर भर दिया था, उस का कुछ अंश तो पहले ही मिट चुका था, बचाखुचा पुत्रशोक ने मिटा दिया.

उन्हें विश्वास हो गया कि उन के अविचार का ईश्वर ने यह दंड दिया है. दुरवस्था, जीर्णता और मानसिक दुर्बलता सभी इस विश्वास को दृढ़ करती थीं. वह गोविंदी को अब भी निर्दोष समझते थे. उस के प्रति एक कटु शब्द उन के मुंह से न निकलता था, न कोई कटु भाव ही उन के दिल में जगह पाता था. विधि की क्रूर क्रीड़ा ही उन का सर्वनाश कर रही है; इस में उन्हें लेशमात्र भी संदेह न था.

अब वह घर उन्हें फाड़े खाता था. घर के प्राण से निकल गए थे. अब माता किसे गोद में ले कर चंदा मामा को बुलाएगी, किसे उबटन मलेगी, किस के लिए प्रातःकाल हलुवा पकाएगी.

अब सब कुछ शून्य था, मालूम होता था कि उन के हृदय निकाल लिए गए हैं. अपमान, कष्ट, अनाहार, इन सारी विडंबनाओं के होते हुए भी बालक की बालक्रीड़ाओं में वे सब कुछ भूल जाते थे. उस के स्नेहमय लालनपालन में ही अपना जीवन सार्थक समझते थे. अब चारों ओर अंधकार था.

यदि ऐसे मनुष्य हैं, जिन्हें विपत्ति से उत्तेजना और साहस मिलता है, तो ऐसे भी मनुष्य हैं, जो आपत्ति काल में कर्त्तव्यहीन, पुरुषार्थहीन और उद्यमहीन हो जाते हैं. ज्ञानचंद्र शिक्षित थे, योग्य थे यदि शहर में जा कर दौड़धूप करते, तो उन्हें कहीं न कहीं काम मिल जाता. वेतन कम ही सही, रोटियों को तो मुहताज न रहते; किंतु अविश्वास उन्हें घर से निकलने न देता था. कहां जाएं, शहर में कौन जानता है? अगर दोचार परिचित प्राणी हैं भी, तो उन्हें मेरी क्यों परवा होने लगी? फिर इस दशा में जाएं कैसे? देह पर साबित कपड़े भी नहीं.

जाने के पहले गोविंदी के लिए कुछ न कुछ प्रबंध करना आवश्यक था. उस का कोई सुभीता न था. इन्हीं चिंताओं में पड़ेपड़े उन के दिन कटते जाते थे. यहां तक कि उन्हें घर से बाहर निकलते भी बड़ा संकोच होता था.

गोविंदी ही पर अन्नोपार्जन का भार था. बेचारी दिन को बच्चों के कपड़े सीती, रात को दूसरों के लिए आटा पीसती. ज्ञानचंद्र सब कुछ देखते थे और माथा ठोक कर रह जाते थे.

एक दिन भोजन करते हुए ज्ञानचंद्र ने आत्मधिक्कार के भाव से मुसकरा कर कहा—मुझ सा निर्लज्ज पुरुष भी संसार में दूसरा न होगा, जिसे स्त्री की कमाई खाते भी मौत नहीं आती!

गोविंदी ने भौं सिकोड़ कर कहा—तुम्हारे पैरों पड़ती हूं, मेरे सामने ऐसी बातें मत किया करो. है तो यह सब मेरे ही कारन?

ज्ञान.—तुम ने पूर्व जन्म में कोई बड़ा पाप किया था गोविंदी, जो मुझ जैसे निखट्टू के पाले पड़ी. मेरे जीते ही तुम विधवा हो. धिक्कार है ऐसे जीवन को!

गोविंदी—तुम मेरा ही खून पियो; अगर फिर इस तरह की कोई बात मुंह से निकालो.

तुम्हारी दासी बन कर मेरा जन्म सफल हो गया. मैं इसे पूर्वजन्म की तपस्या का पुनीत फल समझती हूं. दुखसुख किस पर नहीं आता. तुम्हें भगवान कुशल से रखें, यही मेरी अभिलाषा है.

ज्ञान.—भगवान तुम्हारी अभिलाषा पूरी करें! खूब चक्की पीसो.

गोविंदी—तुम्हारी बला से चक्की पीसती हूं.

ज्ञान.—हां, हां, पीसो. मैं मना थोड़े करता हूं. तुम चक्की न पीसोगी, तो यहां मूंछों पर ताव दे कर खाएगा कौन, अच्छा, आज दाल में घी भी है. ठीक है, अब मेरी चांदी है, बेड़ा पार लग जाएगा. इसी गांव में बड़ेबड़े उच्च कुल की कन्याएं हैं. अपने वस्त्राभूषण के सामने उन्हें और किसी की परवा नहीं. पति महाशय चाहे चोरी कर के लाएं, चाहे डाका मार कर लाएं, उन्हें इस की परवा नहीं.

—तुम में यह गुण नहीं है. तुम उच्च कुल की कन्या नहीं हो. वाह री दुनिया! ऐसी पवित्र देवियों का तेरे यहां अनादर होता है! उन्हें कुलकलंकिनी समझा जाता है! धन्य है तेरा व्यापार! तुम ने कुछ और सुना? सोमदत्त ने मेरे असामियों को बहका दिया है कि लगान मत देना, देखें क्या करते हैं. बताओ, जमींदार को रकम कैसे चुकाऊंगा?

गोविंदी—मैं सोमदत्त से जा कर पूछती हूं न? मना क्या करेंगे, कोई दिल्लगी है!

ज्ञान.—नहीं गोविंदी, तुम उस दुष्ट के पास मत जाना. मैं नहीं चाहता कि तुम्हारे ऊपर उस की छाया भी पड़े. उसे खूब अत्याचार करने दो. मैं भी देख रहा हूं कि भगवान कितने न्यायी हैं.

गोविंदी—तुम असामियों के पास क्यों नहीं जाते? हमारे घर न आएं, हमारा छुआ पानी न पिएं, या हमारे रुपए भी मार लेंगे?

ज्ञान.—वाह, इस से सरल तो कोई काम ही नहीं है. कह देंगे—हम रुपए दे चुके. सारा गांव उन की तरफ हो जाएगा. मैं तो अब गांव भर का द्रोही हूं न. आज खूब डट कर भोजन किया. अब मैं भी रईस हूं, बिना हाथपैर हिलाए गुलछर्रे उड़ाता हूं, सच कहता हूं, तुम्हारी ओर से अब मैं निश्चिंत हो गया. देशविदेश भी चला जाऊं, तो तुम अपना निर्वाह कर सकती हो.

गोविंदी—कहीं जाने का काम नहीं है.

ज्ञान.—तो यहां जाता ही कौन है. किसे कुत्ते ने काटा है, जो यह सेवा छोड़ कर मेहनतमजूरी करने जाए. तुम सचमुच देवी हो, गोविंदी!

भोजन कर के ज्ञानचंद्र बाहर निकले. गोविंदी भोजन कर के कोठरी में आई, तो ज्ञानचंद्र न थे. समझी—कहीं बाहर चले गए होंगे. आज पति की बातों से उस का चित्त कुछ प्रसन्न था. शायद अब वह नौकरीचाकरी की खोज में कहीं जाने वाले हैं. यह आशा बंध रही थी. हां उन की व्यंग्योक्तियों का भाव उस की समझ ही में न आता था. ऐसी बातें वह कभी न करते थे. आज क्या सूझी!

कुछ कपड़े सीने थे. जाड़ों के दिन थे. गोविंदी धूप में बैठ कर सीने लगी. थोड़ी ही देर में शाम हो गई. अभी तक ज्ञानचंद्र नहीं आए. तेलबत्ती का समय आया, फिर भोजन की तैयारी करने लगी. कालिंदी थोड़ा सा दूध दे गई थी. गोविंदी को तो भूख न थी. अब वह एक ही बेला खाती थी. हां, ज्ञानचंद्र के लिए रोटियां सेकनी थीं. सोचा—दूध है ही, दूध

रोटी खा लेंगे.

भोजन बना कर निकली ही थी कि सोमदत्त ने आंगन में आ कर पूछा—कहां हैं ज्ञानू?

गोविंदी—कहीं गए हैं.

सोम.—कपड़े पहन कर गए हैं?

गोविंदी—हां; काली मिर्जई पहने थे.

सोम.—जूते भी पहने थे?

गोविंदी की छाती धड़धड़ करने लगी. बोली—हां, जूते तो पहने थे. क्यों पूछते हो?

सोमदत्त ने जोर से हाथ मार कर कहा—हाय ज्ञानू! हाय!

गोविंदी घबरा कर बोली—क्या हुआ, दादा जी? हाय! बताते क्यों नहीं! हाय!

सोम.—अभी थाने से आ रहा हूं. वहां उन की लाश मिली है. रेल के नीचे दब गए! हाय ज्ञानू! मुझ हत्यारे को क्यों न मौत आ गई?

गोविंदी के मुंह से फिर कोई शब्द न निकला. अंतिम 'हाय' के साथ बहुत दिनों तक तड़पता हुआ प्राणपक्षी उड़ गया.

एक क्षण में गांव की कितनी ही स्त्रियां जमा हो गईं. सब कहती थीं—देवी थी! सती थी!

प्रातःकाल दो अर्थियां गांव से निकलीं. एक पर रेशमी चुंदरी का कफन था, दूसरी पर रेशमी शाल का. गांव के द्विजों में से केवल सोमदत्त साथ था. शेष गांव के नीच जाति वाले आदमी थे. सोमदत्त ही ने दाहक्रिया का प्रबंध किया था. वह रहरह कर दोनों हाथों से अपनी छाती पीटता था और जोरजोर से चिल्लाता था—हाय! हाय ज्ञानू!!

चोरी

हाय बचपन! तेरी याद नहीं भूलती! यह कच्चा, टूटा घर, यह पुआल का बिछौना; वह नंगे बदन, नंगे पांव खेतों में घूमना; आम के पेड़ों पर चढ़ना—सारी बातें आंखों के सामने फिर रही हैं. चमरौधे जूते पहन कर उस वक्त कितनी खुशी होती थी, अब 'फ्लेक्स' के बूटों से भी नहीं होती.

गरम पनुए रस में जो मजा था, वह अब गुलाब के शर्बत में भी नहीं; चबैने और कच्चे बेरों में जो रस था, वह अब अंगूर और खीर मोहन में भी नहीं मिलता.

मैं अपने चचेरे भाई हलधर के साथ दूसरे गांव में एक मौलवी साहब के यहां पढ़ने जाया करता था. मेरी उम्र आठ साल थी. हलधर, वह अब स्वर्ग में निवास कर रहे हैं, मुझ से दो साल जेठे थे. हम दोनों प्रातःकाल बासी रोटियां खा, दोपहर के लिए मटर और जौ का चबैना ले कर चल देते थे. फिर तो सारा दिन अपना था.

मौलवी साहब के यहां कोई हाजिरी का रजिस्टर तो था नहीं, और न गैरहाजिरी का जुर्माना ही देना पड़ता था. फिर डर किस बात का! कभी तो थाने के सामने खड़े सिपाहियों की कवायद देखते, कभी किसी भालू या बंदर नचाने वाले मदारी के पीछेपीछे घूमने में दिन काट देते, कभी रेलवे स्टेशन की ओर निकल जाते और गाड़ियों की बहार देखते.

गाड़ियों के समय का जितना ज्ञान हम को था, उतना शायद टाइमटेबिल को भी न था. रास्ते में शहर के एक महाजन ने एक बाग लगवाना शुरू किया था. वहां एक कुआं खुद रहा था. वह भी हमारे लिए एक दिलचस्प तमाशा था. बूढ़ा माली हमें अपनी झोपड़ी में बड़े प्रेम से बैठाता था. हम उस से झगड़झगड़ कर उस का काम करते! कहीं बाल्टी लिए पौधों को सींच रहे हैं, कहीं हैं. खुरपी से क्यारियां गोड़ रहे हैं, कहीं कैंची से बेलों की पत्तियां छांट रहे हैं.

उन कामों में कितना आनंद था! माली बाल प्रकृति का पंडित था. हम से काम लेता, पर इस तरह मानो हमारे ऊपर कोई एहसान कर रहा है. जितना काम वह दिन भर में करता, हम घंटे भर में निबटा देते थे. अब वह माली नहीं है; लेकिन बाग हराभरा है. उस के पास से हो कर गुजरता हूं, तो जी चाहता है; उन पेड़ों के गले मिल कर रोऊं, और कहूं—प्यारे, तुम मुझे भूल गए; लेकिन मैं तुम्हें नहीं भूला; मेरे हृदय में तुम्हारी याद अभी तक हरी है—उतनी ही हरी, जितने तुम्हारे पत्ते. निःस्वार्थ प्रेम के तुम जीतेजागते स्वरूप हो.

कभीकभी हम हफ्तों गैरहाजिर रहते; पर मौलवी साहब से ऐसा बहाना कर देते कि उन की चढ़ी हुई त्योरियां उतर जातीं. उतनी कल्पनाशक्ति आज होती तो ऐसा उपन्यास

लिख मारता कि लोग चकित रह जाते. अब तो यह हाल है कि बहुत सिर खपाने के बाद कोई कहानी सूझती है. खैर, हमारे मौलवी साहब दरजी थे. मौलवीगीरी केवल शौक से करते थे.

हम दोनों भाई अपने गांव के कुरमी कुम्हारों से उन की खूब बड़ाई करते थे. यों कहिए कि हम मौलवी साहब के सफरी एजेंट थे. हमारे उद्योग से जब मौलवी साहब को कुछ काम मिल जाता, तो हम फूले न समाते! जिस दिन कोई अच्छा बहाना न सूझता, मौलवी साहब के लिए कोई न कोई सौगात ले जाते. कभी सेर आध सेर फलियां तोड़ लीं, तो कभी दसपांच ऊख; कभी जौ या गेहूं की हरीहरी बालें ले लीं.

उन सौगातों को देखते ही मौलवी साहब का क्रोध शांत हो जाता. जब इन चीजों की फसल न होती, तो हम सजा से बचने का कोई और ही उपाय सोचते. मौलवी साहब को चिड़ियों का शौक था. मकतब में श्याम, बुलबुल, दहियल और चंडूलों के पिंजरे लटकते रहते थे. हमें सबक याद हो या न हो पर चिड़ियों को याद हो जाते थे. हमारे साथ ही वे पढ़ा करती थीं. इन चिड़ियों के लिए बेसन पीसने में हम लोग खूब उत्साह दिखाते थे.

मौलवी साहब सब लड़कों को पतिंगे पकड़ लाने की ताकीद करते रहते थे. इन चिड़ियों को पतिंगों से विशेष रुचि थी. कभीकभी हमारी बला पतिंगों ही के सिर चली जाती थी. उन का बलिदान कर के हम मौलवी साहब के रौद्र रूप को प्रसन्न कर लिया करते थे.

एक दिन सबेरे हम दोनों भाई तालाब में मुंह धोने गए. हलधर ने कोई सफेद सी चीज मुट्ठी में ले कर दिखाई. मैं ने लपक कर मुट्ठी खोली; तो उस में एक रुपया था. विस्मित हो कर पूछा—यह रुपया तुम्हें कहां मिला?

हलधर—अम्मां ने ताक पर रखा था; चारपाई खड़ी कर के निकाल लाया.

घर में कोई संदूक या अलमारी तो थी नहीं; रुपएपैसे एक ऊंचे ताक पर रख दिए जाते थे. एक दिन पहले चचा जी ने सन बेचा था. उसी के रुपए जमींदार को देने के लिए रखे हुए थे. हलधर को न जाने क्यों कर पता लग गया. जब घर के सब लोग कामधंधे में लग गए, तो चारपाई खड़ी की और उस पर चढ़ कर एक रुपया निकाल लाया.

उस वक्त तक हम ने कभी रुपया छुआ तक न था. वह रुपया देख कर आनंद और भय की जो तरंगें दिल में उठी थीं, वे अभी तक याद हैं; हमारे लिए एक रुपया एक अलभ्य वस्तु थी. मौलवी साहब को हमारे यहां से सिर्फ बारह आने मिला करते थे.

महीने के अंत में चचा जी खुद जा कर पैसे दे आते थे. भला, कौन हमारे गर्व का अनुमान कर सकता है! लेकिन मार का भय आनंद में विघ्न डाल रहा था. रुपए अनगिनती तो थे नहीं. चोरी का खुल जाना मानी हुई बात थी. चचा जी के क्रोध का भी, मुझे तो नहीं; हलधर को प्रत्यक्ष अनुभव हो चुका था. यों उन से ज्यादा सीधासादा आदमी दुनिया में न था. चचा ने उन की रक्षा का भार सिर पर न रख लिया होता, तो कोई बनिया उन्हें बाजार में बेच सकता था; पर जब क्रोध आ जाता, तो फिर उन्हें कुछ न सूझता.

और तो और, चची भी उन के क्रोध का सामना करते डरती थीं. हम दोनों ने कई मिनट तक इन्हीं बातों पर विचार किया, और आखिर यही निश्चय हुआ कि आई हुई लक्ष्मी को न जाने देना चाहिए. एक तो हमारे ऊपर संदेह होगा ही नहीं, अगर हुआ भी तो हम

साफ इनकार कर जाएंगे. कहेंगे, हम रुपया ले कर क्या करते. थोड़ा सोचविचार करते, तो यह निश्चय पलट जाता, और वह बीभत्स लीला न होती, जो आगे चल कर हुई; पर उस समय हम में शांति से विचार करने की क्षमता ही न थी.

मुंहहाथ धो कर हम दोनों घर आए और डरतेडरते अंदर कदम रखा. अगर कहीं इस वक्त तलाशी की नौबत आई, तो फिर भगवान ही मालिक हैं. लेकिन सब लोग अपनाअपना काम कर रहे थे. कोई हम से न बोला. हम ने नाश्ता भी न किया, चबैना भी न लिया; किताब बगल में दबाई और मदरसे का रास्ता लिया.

बरसात के दिन थे. आकाश पर बादल छाए हुए थे. हम दोनों खुशखुश मकतब चले जा रहे थे. आज काउंसिल की मिनिस्ट्री पा कर भी शायद उतना आनंद न होता. हजारों मंसूबे बांधते थे, हजारों हवाई किले बनाते थे. यह अवसर बड़े भाग्य से मिला था. जीवन में फिर शायद ही वह अवसर मिले.

इसलिए रुपए को इस तरह खर्च करना चाहते थे कि ज्यादा से ज्यादा दिनों तक चल सके. यद्यपि उन दिनों पांच आने सेर बहुत अच्छी मिठाई मिलती थी और शायद आधा सेर मिठाई में हम दोनों अफर जाते; लेकिन यह खयाल हुआ कि मिठाई खाएंगे तो रुपया आज ही गायब हो जाएगा. कोई सस्ती चीज खानी चाहिए, जिस में मजा भी आए, पेट भी भरे और पैसे भी कम खर्च हों.

आखिर अमरूदों पर हमारी नजर गई. हम दोनों राजी हो गए. दो पैसे के अमरूद लिए. सस्ता समय था, बड़ेबड़े बारह अमरूद मिले. हम दोनों के कुर्तों के दामन भर गए.

जब हलधर ने खटकिन के हाथ में रुपया रखा, तो उस ने संदेह से देख कर पूछा—रुपया कहां पाया, लाला? चुरा तो नहीं लाए?

जवाब हमारे पास तैयार था. ज्यादा नहीं, तो दोतीन किताबें पढ़ ही चुके थे. विद्या का कुछकुछ असर हो चला था. मैं ने झट से कहा—मौलवी साहब को फीस देनी है. घर में पैसे न थे, तो चचा जी ने रुपया दे दिया.

इस जवाब ने खटकिन का संदेह दूर कर दिया. हम दोनों ने एक पुलिया पर बैठ कर खूब अमरूद खाए. मगर अब साढ़े पंद्रह आने पैसे कहां ले जाएं. एक रुपया छिपा लेना तो इतना मुश्किल काम न था. पैसों का ढेर कहां छिपता. न कमरे में इतनी जगह थी और न जेब में इतनी गुंजाइश. उन्हें अपने पास रखना चोरी का ढिंढोरा पीटना था. बहुत सोचने के बाद यह निश्चय किया कि बारह आने तो मौलवी साहब को दे दिए जाएं, शेष साढ़े तीन आने की मिठाई उड़े.

यह फैसला कर के हम लोग मकतब पहुंचे. आज कई दिन के बाद गए थे. मौलवी साहब ने बिगड़ कर पूछा—इतने दिन कहां रहे?

मैं ने कहा—मौलवी साहब, घर में गमी हो गई.

यह कहतेकहते बारह आने उन के सामने रख दिए. फिर क्या पूछना था? पैसे देखते ही मौलवी साहब की बाछें खिल गईं. महीना खत्म होने में अभी कई दिन बाकी थे.

साधारणतः महीना चढ़ जाने और बारबार तकाजे करने पर कहीं पैसे मिलते थे. अब की इतनी जल्दी पैसे पा कर उन का खुश होना कोई अस्वाभाविक बात न थी. हम ने अन्य लड़कों की ओर सगर्व नेत्रों से देखा, मानो कह रहे हों—एक तुम हो कि मांगने पर भी नहीं

देते, एक हम हैं कि पेशगी देते हैं.

हम अभी सबक पढ़ ही रहे थे कि मालूम हुआ, आज तालाब का मेला है, दोपहर में छुट्टी हो जाएगी. मौलवी साहब मेले में बुलबुल लड़ाने जाएंगे.

यह खबर सुनते ही हमारी खुशी का ठिकाना न रहा. बारह आने तो बैंक में जमा ही कर चुके थे; साढ़े तीन आने में मेला देखने की ठहरी. खूब बहार रहेगी. मजे से रेवड़ियां खाएंगे, गोलगप्पे उड़ाएंगे, झूले पर चढ़ेंगे और शाम को घर पहुंचेंगे; लेकिन मौलवी साहब ने एक कड़ी शर्त यह लगा दी थी कि सब लड़के छुट्टी के पहले अपनाअपना सबक सुना दें. जो सबक न सुना सकेगा, उसे छुट्टी न मिलेगी.

नतीजा यह हुआ कि मुझे तो छुट्टी मिल गई; पर हलधर कैद कर लिए गए. और कई लड़कों ने भी सबक सुना दिए थे वे सभी मेला देखने चल पड़े. मैं भी उन के साथ हो लिया. तय हो गया था कि वह छुट्टी पाते ही मेले में आ जाएं, और दोनों साथसाथ मेला देखें.

मैं ने वचन दिया आ कि जब तक वह न आएंगे, एक पैसा भी खर्च न करूंगा; लेकिन क्या मालूम था कि दुर्भाग्य कुछ और ही लीला रच रहा है! मुझे मेला पहुंचे एक घंटे से ज्यादा गुजर गया; पर हलधर का कहीं पता नहीं. क्या अभी तक मौलवी साहब ने छुट्टी नहीं दी, या रास्ता भूल गए? आंखें फाड़फाड़ कर सड़क की ओर देखता था. अकेले मेला देखने में जी भी न लगता था. यह संशय भी हो रहा था कि कहीं चोरी खुल तो नहीं गई और चाचा जी हलधर को पकड़ कर घर तो नहीं ले गए?

आखिर जब शाम हो गई, तो मैं ने कुछ रेवड़ियां खाईं और हलधर के हिस्से के पैसे जेब में रख कर धीरेधीरे घर चला. रास्ते में खयाल आया, मकतब होता चलूं. शायद हलधर अभी वहीं हो; मगर वहां सन्नाटा था.

हां, एक लड़का खेलता हुआ मिला. उस ने मुझे देखते ही जोर से कहकहा मारा और बोला—बच्चा, घर जाओ तो कैसी मार पड़ती है. तुम्हारे चचा आए थे. हलधर को मारतेमारते ले गए हैं. अजी, ऐसा तान पर घूंसा मारा कि मियां हलधर मुंह के बल गिर पड़े. यहां से घसीटते ले गए हैं. तुम ने मौलवी साहब की तनख्वाह दे दी थी; वह भी ले ली. अभी कोई बहाना सोच लो, नहीं तो बेभाव की पड़ेगी.

मेरी सिट्टीपिट्टी भूल गई, बदन का लहू सूख गया. वही हुआ, जिस का मुझे शक हो रहा था. पैर मनमन भर के हो गए. घर की ओर एकएक कदम चलना मुश्किल हो रहा था.

देवीदेवताओं के जितने नाम याद थे सभी की मानता मानी—किसी को लड्डू, किसी को पेड़े, किसी को बतासे. गांव के पास पहुंचा, तो गांव के डीह का सुमिरन किया; क्योंकि अपने हलके में डीह ही की इच्छा सर्वप्रधान होती है.

यह सब कुछ किया, लेकिन ज्योंज्यों घर निकट आता, दिल की धड़कन बढ़ती जाती थी. घटाएं उमड़ी आती थीं. मालूम होता था—आसमान फट कर गिरा ही चाहता है. देखता था—लोग अपनेअपने काम छोड़छोड़ भागे जा रहे हैं, गोरू भी पूंछ उठाए घर की ओर उछलतेकूदते चले जाते थे.

चिड़ियां अपने घोंसलों की ओर उड़ी चली आती थीं, लेकिन मैं उसी मंद गति से चला जाता था; मानो पैरों में शक्ति नहीं. जी चाहता था—जोर का बुखार चढ़ आए, या कहीं चोट लग जाए; लेकिन कहने से धोबी गधे पर नहीं चढ़ता. बुलाने से मौत नहीं आती.

बीमारी का तो कहना ही क्या! कुछ न हुआ, और धीरेधीरे चलने पर भी घर सामने आ ही गया. अब क्या हो?

हमारे द्वार पर इमली का एक घना वृक्ष था. मैं उसी की आड़ में छिप गया कि जरा और अंधेरा हो जाए, तो चुपके से घुस जाऊं और अम्मां के कमरे में चारपाई के नीचे जा बैठूं. जब सब लोग सो जाएंगे, तो अम्मां से सारी कथा कह सुनाऊंगा.

अम्मां कभी नहीं मारतीं. जरा उन के सामने झूठमूठ रोऊंगा, तो वह और भी पिघल जाएंगी. रात कट जाने पर फिर कौन पूछता है. सुबह तक सब का गुस्सा ठंडा हो जाएगा. अगर ये मंसूबे पूरे हो जाते, तो इस में संदेह नहीं कि मैं बेदाग बच जाता. लेकिन वहां तो विधाता को कुछ और मंजूर था. मुझे एक लड़के ने देख लिया, और मेरे नाम की रट लगाते हुए सीधे मेरे घर में भागा.

अब मेरे लिए कोई आशा न रही. लाचार घर में दाखिल हुआ, तो सहसा मुंह से एक चीख निकल गई, जैसे मार खाया हुआ कुत्ता किसी को अपनी ओर आता देख कर भय से चिल्लाने लगता है. बरोठे में पिता जी बैठे थे.

पिता जी का स्वास्थ्य इन दिनों कुछ खराब हो गया था. छुट्टी ले कर घर आए हुए थे, यह तो नहीं कह सकता कि उन्हें शिकायत क्या थी; पर वह मूंग की दाल खाते थे, और संध्या समय शीशे के गिलास में एक बोतल में से कुछ उंड़ेलउंड़ेल कर पीते थे.

शायद वह किसी तजुरबेकार हकीम की बताई हुई दवा थी. दवाएं सब बासने वाली और कड़वी होती हैं. यह दवा भी बुरी ही थी; पर पिता जी न जाने क्यों इस दवा को खूब मजा लेले कर पीते थे. हम जो दवा पीते हैं, तो आंखें बंद कर के एक ही घूंट में गटक जाते हैं; पर शायद उस दवा का असर धीरेधीरे पीने में ही होता हो.

पिता जी के पास गांव के दोतीन और कभीकभी चारपांच और रोगी भी जमा हो जाते; और घंटों दवा पीते रहते थे. मुश्किल से खाना खाने उठते थे. इस समय भी वह दवा पी रहे थे.

रोगियों की मंडली जमा थी, मुझे देखते ही पिता जी ने लाललाल आंखें कर के पूछा —कहां थे अब तक?

मैं ने दबी जबान से कहा—कहीं तो नहीं.

'अब चोरी की आदत सीख रहा है! बोल, तू ने रुपया चुराया कि नहीं?'

मेरी जबान बंद हो गई. सामने नंगी तलवार नाच रही थी. शब्द भी निकालते हुए डरता था.

पिताजी ने जोर से डांट कर पूछा—बोलता क्यों नहीं? तू ने रुपया चुराया कि नहीं?

मैं ने जान पर खेल कर कहा—मैं ने कहां…

मुंह से पूरी बात भी न निकलने पाई थी कि पिता जी विकराल रूप धारण किए, दांत पीसते, झपट कर उठे और हाथ उठाए मेरी ओर चले.

मैं जोर से चिल्ला कर रोने लगा. ऐसा चिल्लाया कि पिताजी सहम गए. उन का हाथ उठा ही रह गया. शायद समझे कि जब अभी से इस का यह हाल है, तब तमाचा पड़ जाने पर कहीं इस की जान ही न निकल जाए.

मैं ने जो देखा कि मेरी हिकमत काम कर गई, तो और भी गला फाड़फाड़ कर रोने

लगा. इतने में मंडली के दोतीन आदमियों ने पिताजी को पकड़ लिया और मेरी ओर इशारा किया कि भाग जा! बच्चे ऐसे मौके पर और भी मचल जाते हैं, और व्यर्थ मार खा जाते हैं. मैं ने बुद्धिमानी से काम लिया.

लेकिन अंदर का दृश्य इस से कहीं भयंकर था. मेरा तो खून सर्द हो गया, हलधर के दोनों हाथ एक खंभे में बंधे थे, सारी देह धूलधूसरित हो रही थी, और वह अभी तक सिसक रहे थे. शायद वह आंगन भर में लोटे थे. ऐसा मालूम हुआ कि सारा आंगन उस के आंसुओं से भर गया है. चची हलधर को डांट रही थीं और अम्मां बैठी मसाला पीस रही थीं.

सब से पहले मुझ पर चच्ची की निगाह पड़ी. बोलीं—लो, वह भी आ गया. क्यों रे, रुपया तू ने चुराया था कि इस ने?

मैं ने निश्शंक हो कर कहा—हलधर ने.

अम्मां बोलीं—अगर उसी ने चुराया था, तो तू ने घर आ कर किसी से कहा क्यों नहीं!

अब झूठ बोले बगैर बचना मुश्किल था. मैं तो समझता हूं कि जब आदमी को जान का खतरा हो, तो झूठ बोलना क्षम्य है. हलधर मार खाने के आदी थे. दोचार घूंसे और पड़ने से उन का कुछ न बिगड़ सकता था. मैं ने मार कभी न खाई थी. मेरा तो दो ही चार घूंसों में काम तमाम हो जाता. फिर हलधर ने भी तो अपने को बचाने के लिए मुझे फंसाने की चेष्टा की थी, नहीं तो चची मुझ से यह क्यों पूछतीं—रुपया तू ने चुराया या हलधर ने? किसी भी सिद्धांत से मेरा झूठ बोलना इस समय स्तुत्य नहीं, तो क्षम्य जरूर था.

मैं ने छूटते ही कहा—हलधर कहते थे किसी से बताया, तो मार ही डालूंगा.

अम्मां—देखा, वही बात निकली न? मैं तो कहती थी कि बच्चा की ऐसी आदत नहीं; पैसा तो वह हाथ से छूता ही नहीं, लेकिन सब लोग मुझी को उल्लू बनाने लगे.

हल.—मैं ने तुम से कब कहा था कि बताओगे, तो मारूंगा?

मैं—वहीं, तालाब के किनारे तो!

हल.—अम्मां, बिलकुल झूठ है!

चची—झूठ नहीं, सच है. झूठा तो तू है, और तो सारा संसार सच्चा है, तेरा नाम निकल गया है न! तेरा बाप नौकरी करता, बाहर से रुपए कमा लाता, चार जने उसे भला आदमी कहते, तो तू भी सच्चा होता. अब तो तू ही झूठा है. जिस के भाग में मिठाई लिखी थी, उस ने मिठाई खाई. तेरे भाग में तो लात खाना ही लिखा था.

यह कहते हुए चची ने हलधर को खोल दिया और हाथ पकड़ कर भीतर ले गईं. मेरे विषय में स्नेहपूर्ण आलोचना कर के अम्मां ने पासा पलट दिया था, नहीं तो अभी बेचारे पर न जाने कितनी मार पड़ती.

मैं ने अम्मां के पास बैठ कर अपनी निर्दोषिता का राग खूब अलापा. मेरी सरलहृदय माता मुझे सत्य का अवतार समझती थीं. उन्हें पूरा विश्वास हो गया कि सारा अपराध हलधर का है. एक क्षण बाद मैं गुड़चबैना लिए कोठरी से बाहर निकला. हलधर भी उस वक्त चिउड़ा खाते हुए बाहर निकले. हम दोनों साथसाथ बाहर आए और अपनीअपनी बीती सुनाने लगे. मेरी कथा सुखमय थी, हलधर की दुखमय; पर अंत दोनों का एक था—गुड़ और चबैना.

कजाकी

मेरी बालस्मृतियों में 'कजाकी' एक न मिटने वाला व्यक्ति है. आज चालीस साल गुजर गए; कजाकी की मूर्ति आंखों के सामने नाच रही है. मैं उन दिनों अपने पिता के साथ आजमगढ़ की एक तहसील में था. कजाकी जाति का पासी था, बड़ा ही हंसमुख, बड़ा ही साहसी, बड़ा ही जिंदादिल. वह रोज शाम को डाक का थैला ले कर आता, रात भर रहता और सबेरे डाक ले कर चला जाता. शाम को फिर उधर से डाक ले कर आ जाता.

मैं दिन भर एक उद्विग्न दशा में उस की राह देखा करता. ज्यों ही चार बजते, व्याकुल हो कर, सड़क पर आ कर खड़ा हो जाता, और थोड़ी देर में कजाकी कंधे पर बल्लम रखे, उस की झुनझुनी बजाता, दूर से दौड़ता हुआ आता दिखलाई देता. वह सांवले रंग का गठीला, लंबा जवान था. शरीर सांचे में ऐसा ढला हुआ कि चतुर मूर्तिकार भी उस में कोई दोष न निकाल सकता. उस की छोटीछोटी मूंछें, उस के सुडौल चेहरे पर बहुत ही अच्छी मालूम होती थीं.

मुझे देख कर वह और तेज दौड़ने लगता, उस की झुनझुनी और तेजी से बजने लगती, और मेरे हृदय में और जोर से खुशी की धड़कन होने लगती. हर्षातिरेक में मैं भी दौड़ पड़ता और एक क्षण में कजाकी का कंधा मेरा सिंहासन बन जाता.

वह स्थान मेरी अभिलाषाओं का स्वर्ग था. स्वर्ग के निवासियों को भी शायद वह आंदोलित आनंद न मिलता होगा जो मुझे कजाकी के विशाल कंधों पर मिलता था. संसार मेरी आंखों में तुच्छ हो जाता और जब कजाकी मुझे कंधे पर लिए हुए दौड़ने लगता, तब तो ऐसा मालूम होता, मानो मैं हवा के घोड़े पर उड़ा जा रहा हूं.

कजाकी डाकखाने में पहुंचता, तो पसीने से तर रहता; लेकिन आराम करने की आदत न थी. थैला रखते ही वह हम लोगों को ले कर किसी मैदान में निकल जाता, कभी हमारे साथ खेलता, कभी बिरहे गा कर सुनाता और कभी कहानियां सुनाता. उसे चोरी और डाके, मारपीट, भूतप्रेत की सैकड़ों कहानियां याद थीं.

मैं ये कहानियां सुन कर विस्मय पूर्ण आनंद में मग्न हो जाता; उस की कहानियों के चोर और डाकू सच्चे योद्धा होते थे, जो अमीरों को लूट कर दीनदुखी प्राणियों का पालन करते थे. मुझे उन पर घृणा के बदले श्रद्धा होती थी.

2

एक दिन कजाकी को डाक का थैला ले कर आने में देर हो गई. सूर्यास्त हो गया और

वह दिखलाई न दिया. मैं खोया हुआ सा सड़क पर दूर तक आंखें फाड़फाड़ कर देखता था; पर वह परिचित रेखा न दिखलाई पड़ी थी. कान लगा कर सुनता था; 'झुनझुन' की वह आमोदमय ध्वनि न सुनाई देती थी. प्रकाश के साथ मेरी आशा भी मलिन होती जाती थी. उधर से किसी को आते देखता, तो पूछता—कजाकी आता है? पर या तो कोई सुनता ही न था, या केवल सिर हिला देता था.

सहसा 'झुनझुन' की आवाज कानों में आई. मुझे अंधेरे में चारों ओर भूत ही दिखलाई देते थे—यहां तक कि माता जी के कमरे में ताक पर रखी हुई मिठाई भी अंधेरा हो जाने के बाद, मेरे लिए त्याज्य हो जाती थी; लेकिन वह आवाज सुनते ही मैं उस की तरफ जोर से दौड़ा. हां, वह कजाकी ही था. उसे देखते ही मेरी विकलता क्रोध में बदल गई. मैं उसे मारने लगा, फिर रूठ कर के अलग खड़ा हो गया.

कजाकी ने हंस कर कहा—मारोगे, तो मैं एक चीज लाया हूं, वह न दूंगा.

मैं ने साहस कर के कहा—जाओ, मत देना, मैं लूंगा ही नहीं.

कजाकी—अभी दिखा दूं, तो दौड़ कर गोद में उठा लोगे.

मैं ने पिघल कर कहा—अच्छा, दिखा दो.

कजाकी—तो आ कर मेरे कंधे पर बैठ जाओ, भाग चलूं. आज बहुत देर हो गई है. बाबू जी बिगड़ रहे होंगे.

मैं ने अकड़ कर कहा—पहले दिखा.

मेरी विजय हुई. अगर कजाकी को देर का डर न होता और वह एक मिनट भी और रुक सकता, तो शायद पासा पलट जाता. उस ने कोई चीज दिखलाई, जिसे वह एक हाथ से छाती से चिपटाए हुए था; लंबा मुंह था, और दो आंखें चमक रही थीं.

मैं ने उसे दौड़ कर कजाकी की गोद से ले लिया. यह हिरन का बच्चा था. आह! मेरी उस खुशी का कौन अनुमान करेगा? तब से कठिन परीक्षाएं पास कीं, अच्छा पद भी पाया, रायबहादुर भी हुआ; पर वह खुशी फिर न हासिल हुई. मैं उसे गोद में लिए, उस के कोमल स्पर्श का आनंद उठाता घर की ओर दौड़ा. कजाकी को आने में क्यों इतनी देर हुई इस का खयाल ही न रहा.

मैं ने पूछा—यह कहां मिला, कजाकी?

कजाकी—भैया, यहां से थोड़ी दूर पर एक छोटा सा जंगल है. उस में बहुत से हिरन हैं. मेरा बहुत जी चाहता था कि कोई बच्चा मिल जाए, तो तुम्हें दूं. आज यह बच्चा हिरनों के झुंड के साथ दिखलाई दिया. मैं झुंड की ओर दौड़ा, तो सब के सब भागे. यह बच्चा भी भागा; लेकिन मैं ने पीछा न छोड़ा. और हिरन तो बहुत दूर निकल गए, यही पीछे रह गया. मैं ने इसे पकड़ लिया. इसी से इतनी देर हुई.

यों बातें करते हम दोनों डाकखाने पहुंचे. बाबू जी ने मुझे न देखा, हिरन के बच्चे को भी न देखा, कजाकी ही पर उन की निगाह पड़ी. बिगड़ कर बोले—आज इतनी देर कहां लगाई? अब थैला ले कर आया है, उसे ले कर क्या करूं? डाक तो चली गई. बता, तूने इतनी देर कहां लगाई?

कजाकी के मुंह से आवाज न निकली.

बाबू जी ने कहा—तुझे शायद अब नौकरी नहीं करनी है. नीच है न, पेट भरा तो

मोटा हो गया! जब भूखों मरने लगेगा, तो आंखें खुलेंगी.

कजाकी चुपचाप खड़ा रहा.

बाबू जी का क्रोध और बढ़ा. बोले—अच्छा, थैला रख दे और अपने घर की राह ले. सूअर, अब डाक लेके आया है. तेरा क्या बिगड़ेगा, जहां चाहेगा, मजूरी कर लेगा. माथे तो मेरे जाएगी, जवाब तो मुझ से तलब होगा.

कजाकी ने रुआंसे हो कर कहा—सरकार, अब कभी देर न होगी.

बाबू जी—आज क्यों देर की, इस का जवाब दे?

कजाकी के पास इस का कोई जवाब न था. आश्चर्य तो यह था कि मेरी भी जबान बंद हो गई. बाबू जी बड़े गुस्सेवर थे. उन्हें काम करना पड़ता था, उसी से बातबात पर झुंझला पड़ते थे. मैं तो उन के सामने कभी जाता ही न था. वह भी मुझे कभी प्यार न करते थे. घर में केवल दो बार घंटेघंटे भर के लिए भोजन करने आते थे, बाकी सारे दिन दफ्तर में लिखा करते थे. उन्होंने बारबार एक सहकारी के लिए अफसरों से विनय की थी; पर इस का कुछ असर न हुआ था. यहां तक कि तातील के दिन भी बाबू जी दफ्तर ही में रहते थे. केवल माता जी उन का क्रोध शांत करना जानती थीं; पर वह दफ्तर में कैसे आतीं.

बेचारा कजाकी उसी वक्त मेरे देखतेदेखते निकाल दिया गया. उस का बल्लम, चपरास और साफा छीन लिया गया और उसे डाकखाने से निकल जाने का नादिरी हुक्म सुना दिया.

आह! उस वक्त मेरा ऐसा जी चाहता था कि मेरे पास सोने की लंका होती, तो कजाकी को दे देता और बाबू जी को दिखा देता कि आप के निकाल देने से कजाकी का बाल भी बांका नहीं हुआ. किसी योद्धा को अपनी तलवार पर जितना घमंड होता है, उतना ही घमंड कजाकी को अपनी चपरास पर था.

जब वह चपरास खोलने लगा, तो उस के हाथ कांप रहे थे और आंखों से आंसू बह रहे थे. और इस सारे उपद्रव की जड़ वह कोमल वस्तु थी, जो मेरी गोद में मुंह छिपाए ऐसे चैन से बैठी हुई थी, मानो माता की गोद में हो. जब कजाकी चला तो मैं धीरेधीरे उस के पीछेपीछे चला.

मेरे घर के द्वार पर आ कर कजाकी ने कहा—भैया, अब घर जाओ; सांझ हो गई.

मैं चुपचाप खड़ा अपने आंसुओं के वेग को सारी शक्ति से दबा रहा था.

कजाकी फिर बोला—भैया, मैं कहीं बाहर थोड़े ही चला जाऊंगा. फिर आऊंगा और तुम्हें कंधे पर बैठा कर कुदाऊंगा. बाबू जी ने नौकरी ले ली है, तो क्या इतना भी न करने देंगे! तुम को छोड़ कर मैं कहीं न जाऊंगा, भैया! जा कर अम्मां से कह दो, कजाकी जाता है. उस का कहासुना माफ करें.

मैं दौड़ा हुआ घर गया, लेकिन अम्मां जी से कुछ कहने के बदले बिलखबिलख कर रोने लगा.

अम्मां जी रसोई के बाहर निकल कर पूछने लगीं—क्या हुआ बेटा? किस ने मारा! बाबू जी ने कुछ कहा है? अच्छा; रह तो जाओ, आज घर आते हैं, पूछती हूं. जब देखो, मेरे लड़के को मारा करते हैं. चुप रहो बेटा, अब तुम उन के पास कभी मत जाना.

मैं ने बड़ी मुश्किल से आवाज संभाल कर कहा—कजाकी....

अम्मां ने समझा, कजाकी ने मारा है; बोलीं—अच्छा, आने दो कजाकी को देखो, खड़ेखड़े निकलवा देती हूं. हरकारा हो कर मेरे राजा बेटा को मारे! आज ही तो साफा, बल्लम, सब छिनवाए लेती हूं. वाह!

मैं ने जल्दी से कहा—नहीं, कजाकी ने नहीं मारा. बाबू जी ने उसे निकाल दिया है; उस का साफा, बल्लम छीन लिया—चपरास भी ले ली.

अम्मां—यह तुम्हारे बाबू जी ने बहुत बुरा किया. वह बेचारा अपने काम में इतना चौकस रहता है. फिर उसे क्यों निकाला?

मैं ने कहा—आज उसे देर हो गई थी.

यह कह कर मैं ने हिरन के बच्चे को गोद से उतार दिया. घर में उस के भाग जाने का भय न था. अब तक अम्मां की निगाह भी उस पर न पड़ी थी. उसे फुदकते देख कर वह सहसा चौंक पड़ीं और लपक कर मेरा हाथ पकड़ लिया कि कहीं यह भयंकर जीव मुझे काट न खाए! मैं कहां तो फूटफूट कर रो रहा था और कहां अम्मां की घबराहट देख कर खिलखिला कर हंस पड़ा.

अम्मां—अरे, यह तो हिरन का बच्चा है! कहां मिला?

मैं ने हिरन के बच्चे का सारा इतिहास और उस का भीषण परिणाम आदि से अंत तक कह सुनाया—अम्मां, यह इतना तेज भागता था कि कोई दूसरा होता, तो पकड़ ही न सकता. सन्सन् हवा की तरह उड़ता चला जाता था. कजाकी पांचछह घंटे तक इस के पीछे दौड़ता रहा. तब कहीं जा कर बच्चा मिला. अम्मां जी, कजाकी की तरह कोई दुनिया भर में नहीं दौड़ सकता, इसी से तो देर हो गई. इसलिए बाबू जी ने बेचारे को निकाल दिया—चपरास, साफा, बल्लम, सब छीन लिया. अब बेचारा क्या करेगा? भूखों मर जाएगा.

अम्मां ने पूछा—कहां है कजाकी, जरा उसे बुला तो लाओ.

मैं ने कहा—बाहर तो खड़ा है. कहता था, अम्मां जी से मेरा कहासुना माफ करवा देना.

अब तक अम्मां जी मेरे वृत्तांत को दिल्लगी समझ रही थीं. शायद वह समझती थीं कि बाबू जी ने कजाकी को डांटा होगा; लेकिन मेरा अंतिम वाक्य सुन कर संशय हुआ कि सचमुच तो कजाकी बरखास्त नहीं कर दिया गया. बाहर आ कर 'कजाकी! कजाकी' पुकारने लगीं, पर कजाकी का कहीं पता न था. मैं ने बारबार पुकारा; लेकिन कजाकी वहां न था.

खाना तो मैं ने खा लिया—बच्चे शोक में खाना नहीं छोड़ते, खास कर जब रबड़ी भी सामने हो; मगर बड़ी रात तक पड़ेपड़े सोचता रहा—मेरे पास रुपए होते, तो एक लाख रुपए कजाकी को दे देता और कहता—बाबू जी से कभी मत बोलना. बेचारा भूखों मर जाएगा! देखूं, कल आता है कि नहीं. अब क्या करेगा आ कर? मगर आने को तो कह गया है. मैं कल उसे अपने साथ खाना खिलाऊंगा.

यही हवाई किले बनातेबनाते मुझे नींद आ गई.

3

दूसरे दिन मैं दिन भर अपने हिरन के बच्चे की सेवासत्कार में व्यस्त रहा. पहले उस

का नामकरण संस्कार हुआ. 'मुन्नू' नाम रखा गया. फिर मैं ने उस का अपने सब हमजोलियों और सहपाठियों से परिचय कराया. दिन ही भर में वह मुझ से इतना हिल गया कि मेरे पीछेपीछे दौड़ने लगा.

इतनी देर में मैं ने उसे अपने जीवन में एक महत्त्वपूर्ण स्थान दे दिया. अपने भविष्य में बनने वाले विशाल भवन में उस के लिए अलग कमरा बनाने का भी निश्चय कर लिया; चारपाई, सैर करने के लिए फिटन आदि का भी आयोजन कर लिया.

लेकिन संध्या होते ही मैं सब कुछ छोड़छाड़ कर सड़क पर जा खड़ा हुआ और कजाकी की बाट जोहने लगा. जानता था कि कजाकी निकाल दिया गया है, अब उसे यहां आने की कोई जरूरत नहीं रही. फिर न जाने मुझे क्यों यह आशा हो रही थी कि वह आ रहा है.

एकाएक मुझे खयाल आया कि कजाकी भूखों मर रहा होगा. मैं तुरंत घर आया. अम्मां दियाबत्ती कर रही थीं. मैं ने चुपके से एक टोकरी में आटा निकाला; आटा हाथों में लपेटे, टोकरी से गिरते आटे की एक लकीर बनाता हुआ भागा.

जा कर सड़क पर खड़ा हुआ ही था कि कजाकी सामने से आता दिखलाई दिया. उस के पास बल्लम भी था, कमर में चपरास भी थी, सिर पर साफा भी बंधा हुआ था. बल्लम में डाक का थैला भी बंधा हुआ था. मैं दौड़ कर उस की कमर से चिपट गया और विस्मित हो कर बोला—तुम्हें चपरास और बल्लम कहां से मिल गया, कजाकी?

कजाकी ने मुझे उठा कर कंधे पर बैठाते हुए कहा—वह चपरास किस काम की थी, भैया? वह तो गुलामी की चपरास थी, यह पुरानी खुशी की चपरास है. पहले सरकार का नौकर था, अब तुम्हारा नौकर हूं.

यह कहतेकहते उस की निगाह टोकरी पर पड़ी, जो वहीं रखी थी. बोला—यह आटा कैसा है, भैया?

मैं ने सकुचाते हुए कहा—तुम्हारे ही लिए लाया हूं. तुम भूखे होगे, आज क्या खाया होगा?

कजाकी की आंखें तो मैं न देख सका, उस के कंधे पर बैठा हुआ था; हां, उस की आवाज से मालूम हुआ कि उस का गला भर आया है. बोला—भैया, क्या रूखी ही रोटियां खाऊंगा? दाल, नमक, घी—और तो कुछ नहीं है.

मैं अपनी भूल पर बहुत लज्जित हुआ. सच तो है, बेचारा रूखी रोटियां कैसे खाएगा? लेकिन नमक, दाल, घी कैसे लाऊं? अब तो अम्मां चौके में होंगी. आटा ले कर तो किसी तरह भाग आया था (अभी तक मुझे न मालूम था कि मेरी चोरी पकड़ ली गई; आटे की लकीर ने सुराग दे दिया है). अब ये तीनतीन चीजें कैसे लाऊंगा? अम्मां से मांगूंगा, तो कभी न देंगी. एकएक पैसे के लिए तो घंटों रुलाती हैं, इतनी सारी चीजें क्यों देने लगीं?

एकाएक मुझे एक बात याद आई. मैं ने अपनी किताबों के बस्तों में कई आने पैसे रख छोड़े थे. मुझे पैसे जमा कर के रखने में बड़ा आनंद आता था. मालूम नहीं अब वह आदत क्यों बदल गई. अब भी वही हालत होती तो शायद इतना फाकेमस्त न रहता. बाबू जी मुझे प्यार तो कभी न करते थे; पर पैसे खूब देते थे, शायद अपने काम में व्यस्त रहने के कारण, मुझ से पिंड छुड़ाने के लिए इसी नुस्खे को सब से आसान समझते थे. इनकार करने में मेरे रोने और मचलने का भय था.

इस बाधा को वह दूर से टाल देते थे. अम्मां जी का स्वभाव इस से ठीक प्रतिकूल था. उन्हें मेरे रोने और मचलने से किसी काम में बाधा पड़ने का भय न था. आदमी लेटेलेटे दिन भर रोना सुन सकता है; हिसाब लगाते हुए जोर की आवाज से ध्यान बंट जाता है.

अम्मां मुझे प्यार तो बहुत करती थीं, पर पैसे का नाम सुनते ही उन की त्योरियां बदल जाती थीं. मेरे पास किताबें न थीं, हां, एक बस्ता था, जिस में डाकखाने के दोचार फार्म तह कर के पुस्तक के रूप में रखे हुए थे. मैं ने सोचा—दाल, नमक और घी के लिए क्या उतने पैसे काफी न होंगे? मेरी तो मुट्ठी में नहीं आते. यह निश्चय कर के मैं ने कहा—अच्छा, मुझे उतार दो, तो मैं दाल और नमक ला दूं, मगर रोज आया करोगे न?

कजाकी—भैया, खाने को दोगे, तो क्यों न आऊंगा.

मैं ने कहा—मैं रोज खाने को दूंगा.

कजाकी बोला—तो मैं रोज आऊंगा.

मैं नीचे उतरा और दौड़ कर सारी पूंजी उठा लाया. कजाकी को रोज बुलाने के लिए उस वक्त मेरे पास कोहनूर हीरा भी होता, तो उस को भेंट करने में मुझे पसोपेश न होता.

कजाकी ने विस्मित हो कर पूछा—ये पैसे कहां पाए, भैया?

मैं ने गर्व से कहा—मेरे ही तो हैं.

कजाकी—तुम्हारी अम्मां जी तुम को मारेंगी, कहेंगी—कजाकी ने फुसला कर मंगवा लिए होंगे. भैया, इन पैसों की मिठाई ले लेना और मटके में रख देना. मैं भूखों नहीं मरता. मेरे दो हाथ हैं. मैं भला भूखों मर सकता हूं?

मैं ने बहुत कहा कि पैसे मेरे हैं; लेकिन कजाकी ने न लिए. उस ने बड़ी देर तक इधरउधर की सैर कराई, गीत सुनाए और मुझे घर पहुंचा कर चला गया. मेरे द्वार पर आटे की टोकरी भी रख दी.

मैं ने घर में कदम रखा ही था कि अम्मां ने डांट कर कहा—क्यों रे चोर, तू आटा कहां ले गया था? अब चोरी करना सीखता है? बता, किस को आटा दे आया, नहीं तो तेरी खाल उधेड़ कर रख दूंगी.

मेरी नानी मर गई. अम्मां क्रोध में सिंहनी हो जाती थीं. सिटपिटा कर बोला—किसी को तो नहीं दिया.

अम्मां—तूने आटा नहीं निकाला? देख कितना आटा सारे आंगन में बिखरा पड़ा है?

मैं चुप खड़ा था. वह कितना ही धमकाती थीं, चुमकारती थीं, पर मेरी जबान न खुलती थी. आने वाली विपत्ति के भय से प्राण सूख रहे थे. यहां तक कि यह भी कहने की हिम्मत न पड़ती थी कि बिगड़ती क्यों हो, आटा तो द्वार पर रखा हुआ है, और न उठा कर लाते ही बनता था, मानो क्रिया शक्ति ही लुप्त हो गई हो, मानो पैरों में हिलने की सामर्थ्य ही नहीं.

सहसा कजाकी ने पुकारा—बहू जी, आटा द्वार पर रखा हुआ है. भैया मुझे देने को ले गए थे.

यह सुनते ही अम्मां द्वार की ओर चली गईं. कजाकी से वह परदा न करती थीं. उन्होंने कजाकी से कोई बात की या नहीं, वह तो मैं नहीं जानता; लेकिन अम्मां जी खाली टोकरी लिए हुए घर में आईं. फिर कोठरी में जा कर संदूक से कुछ निकाला और द्वार की

ओर गईं. मैं ने देखा कि उन की मुट्ठी बंद थी. अब मुझ से वहां खड़ा न रहा गया.

अम्मां जी के पीछेपीछे मैं भी गया. अम्मां ने द्वार पर कई बार पुकारा; मगर कजाकी चला गया था.

मैं ने बड़ी धीरता से कहा—मैं जा कर खोज लाऊं, अम्मां जी? अम्मां जी ने किवाड़े बंद करते हुए कहा—तुम अंधेरे में कहां जाओगे, अभी तो यहीं खड़ा था. मैं ने कहा कि यहीं रहना; मैं आती हूं. तब तक न जाने कहां खिसक गया. बड़ा संकोची है! आटा तो लेता ही न था. मैं ने जबरदस्ती उस के अंगौछे में बांध दिया. मुझे तो बेचारे पर बड़ी दया आती है. न जाने बेचारे के घर में कुछ खाने को है कि नहीं. रुपए लाई थी कि दे दूंगी; पर न जाने कहां चला गया. अब तो मुझे भी साहस हुआ. मैं ने अपनी चोरी की पूरी कथा कह डाली. बच्चों के साथ समझदार बच्चे बन कर मांबाप उन पर जितना असर डाल सकते हैं, जितनी शिक्षा दे सकते हैं, उतने बूढ़े बन कर नहीं.

अम्मां जी ने कहा—तुम ने मुझ से पूछ क्यों न लिया? क्या मैं कजाकी को थोड़ा सा आटा न देती?

मैं ने इस का उत्तर न दिया. दिल में कहा—इस वक्त तुम्हें कजाकी पर दया आ गई है, जो चाहे दे डालो; लेकिन मैं मांगता, तो मारने दौड़तीं. हां, यह सोच कर चित्त प्रसन्न हुआ कि अब कजाकी भूखों न मरेगा. अम्मां जी उसे रोज खाने को देंगी और वह रोज मुझे कंधे पर बिठा कर सैर कराएगा.

दूसरे दिन, मैं दिन भर मुन्नू के साथ खेलता रहा. शाम को सड़क पर जा कर खड़ा हो गया. मगर अंधेरा हो गया और कजाकी का कहीं पता नहीं. दीए जल गए, रास्ते में सन्नाटा छा गया; पर कजाकी न आया!

मैं रोता हुआ घर आया.

अम्मां जी ने पूछा—क्यों रोते हो, बेटा? क्या कजाकी नहीं आया?

मैं और जोर से रोने लगा. अम्मां जी ने मुझे छाती से लगा लिया. मुझे ऐसा मालूम हुआ कि उन का भी कंठ गदगद हो गया है.

उन्होंने कहा—बेटा, चुप हो जाओ, मैं कल किसी हरकारे को भेज कर कजाकी को बुलवाऊंगी.

मैं रोते ही रोते सो गया. सबेरे ज्यों ही आंखें खुली, मैं ने अम्मां जी से कहा—कजाकी को बुलवा दो.

अम्मां ने कहा—आदमी गया है, बेटा! कजाकी आता होगा.

खुश हो कर खेलने लगा. मुझे मालूम था कि अम्मां जी जो बात कहती हैं, उसे पूरा जरूर करती हैं. उन्होंने सबेरे ही एक हरकारे को भेज दिया था. दस बजे जब मैं मुन्नू को लिए घर आया, तो मालूम हुआ कि कजाकी अपने घर में नहीं मिला. वह रात को भी घर न गया था. उस की स्त्री रो रही थी कि न जाने कहां चले गए. उसे भय था कि वह कहीं भाग गया है.

बालकों का हृदय कितना कोमल होता है, इस का अनुमान दूसरा नहीं कर सकता. उन में अपने भावों को व्यक्त करने के लिए शब्द नहीं होते. उन्हें यह भी ज्ञान नहीं होता कि कौन सी बात उन्हें विकल कर रही है, कौन सा कांटा उन के हृदय में खटक रहा है, क्यों

बारबार उन्हें रोना आता है, क्यों वे मन मारे बैठे रहते हैं, क्यों खेलने में जी नहीं लगता? मेरी भी यही दशा थी. कभी घर में आता, कभी बाहर जाता, कभी सड़क पर जा पहुंचता. आंखें कजाकी को ढूंढ़ रही थीं. वह कहां चला गया? कहीं भाग तो नहीं गया?

तीसरे पहर मैं खोया हुआ सा सड़क पर खड़ा था. सहसा मैं ने कजाकी को एक गली में देखा. हां, वह कजाकी ही था. मैं उस की ओर चिल्लाता हुआ दौड़ा; पर गली में उस का पता न था, न जाने किधर गायब हो गया. मैं ने गली के इस सिरे से उस सिरे तक देखा; मगर कहीं कजाकी की गंध तक न मिली.

घर जा कर मैं ने अम्मां जी से यह बात कही. मुझे ऐसा जान पड़ा कि वह यह बात सुन कर बहुत चिंतित हो गईं.

इस के बाद दोतीन दिन तक कजाकी न दिखलाई दिया. मैं भी अब उसे कुछकुछ भूलने लगा. बच्चे पहले जितना प्रेम करते हैं, बाद को उतने ही निष्ठुर भी हो जाते हैं. जिस खिलौने पर प्राण देते हैं, उसी को दोचार दिन के बाद पटक कर फोड़ भी डालते हैं.

दसबारह दिन और बीत गए. दोपहर का समय था. बाबू जी खाना खा रहे थे. मैं मुन्नू के पैरों में पीनस की पैजनियां बांध रहा था. एक औरत घूंघट निकाले हुए आई और आंगन में खड़ी हो गई. उस के कपड़े फटे हुए और मैले थे, पर गोरी, सुंदर स्त्री थी. उस ने मुझ से पूछा—भैया, बहू जी कहां हैं?

मैं ने उस के पास जा कर उस का मुंह देखते हुए कहा—तुम कौन हो, क्या बेचती हो?

औरत—कुछ बेचती नहीं हूं, तुम्हारे लिए ये कमलगट्टे लाई हूं. भैया, तुम्हें तो कमलगट्टे बहुत अच्छे लगते हैं न?

मैं ने उस के हाथों से लटकती हुई पोटली को उत्सुक नेत्रों से देख कर पूछा—कहां से लाई हो? देखें.

औरत—तुम्हारे हरकारे ने भेजा है, भैया!

मैं ने उछल कर पूछा—कजाकी ने?

औरत ने सिर हिला कर 'हां' कहा और पोटली खोलने लगी. इतने में अम्मां जी भी रसोई से निकल आईं. उस ने अम्मां के पैरों का स्पर्श किया.

अम्मां ने पूछा—तू कजाकी की घरवाली है?

औरत ने सिर झुका लिया.

अम्मां—आजकल कजाकी क्या करता है.

औरत ने रो कर कहा—बहू जी, जिस दिन से आप के पास से आटा ले कर गए हैं, उसी दिन से बीमार पड़े हैं, बस, 'भैयाभैया' किया करते हैं. भैया ही में उन का मन बसा रहता है. चौंकचौंक कर 'भैया! भैया!' कहते हुए द्वार की ओर दौड़ते हैं. न जाने उन्हें क्या हो गया है, बहू जी! एक दिन मुझ से कुछ कहा न सुना, घर से चल दिए और एक गली में छिप कर भैया को देखते रहे. जब भैया ने उन्हें देख लिया, तो भागे. तुम्हारे पास आते हुए लजाते हैं.

मैं ने कहा—हांहां, मैं ने उस दिन तुम से जो कहा था अम्मां जी!

अम्मां—घर में कुछ खानेपीने को है?

औरत—हां बहू जी, तुम्हारे आशीर्वाद से खानेपीने का दुख नहीं है. आज सबेरे उठे और तालाब की ओर चले गए. बहुत कहती रही, बाहर मत जाओ, हवा लग जाएगी. मगर

न माना! मारे कमजोरी के पैर कांपने लगते हैं, मगर तालाब में घुस कर ये कमलगट्टे तोड़ लाए. तब मुझ से कहा—ले जा, भैया को दे आ. उन्हें कमलगट्टे बहुत अच्छे लगते हैं. कुशलक्षेम पूछती आना.

मैं ने पोटली से कमलगट्टे ले लिए थे और मजे से चख रहा था. अम्मां ने बहुत आंखें दिखाईं, मगर यहां इतनी सब्र कहां!

अम्मां ने कहा—कह देना सब कुशल है.

मैं ने कहा—यह भी कह देना कि भैया ने बुलाया है. न जाओगे तो फिर तुम से कभी न बोलेंगे, हां!

बाबू जी खाना खा कर निकल आए थे. तौलिए से हाथमुंह पोंछते हुए बोले—और यह भी कह देना कि साहब ने तुम को बहाल कर दिया है. जल्दी जाओ, नहीं तो कोई दूसरा आदमी रख लिया जाएगा.

औरत ने अपना कपड़ा उठाया और चली गई. अम्मां ने बहुत पुकारा, पर वह न रुकी. शायद अम्मां जी उसे सीधा देना चाहती थीं.

अम्मां ने पूछा—सचमुच बहाल हो गया?

बाबू जी—और क्या झूठे ही बुला रहा हूं. मैं ने तो पांचवें ही दिन बहाली की रिपोर्ट की थी.

अम्मां—यह तुम ने अच्छा किया.

बाबू जी—उस की बीमारी की यही दवा है.

4

प्रातःकाल मैं उठा, तो क्या देखता हूं कि कजाकी लाठी टेकता हुआ चला आ रहा है. वह बहुत दुबला हो गया था, मालूम होता था, बूढ़ा हो गया है. हराभरा पेड़ सूख कर ठूंठ हो गया था. मैं उस की ओर दौड़ा और उस की कमर से चिमट गया.

कजाकी ने मेरे गाल चूमे और मुझे उठा कर कंधे पर बैठाने की चेष्टा करने लगा; पर मैं न उठ सका. तब वह जानवरों की भांति भूमि पर हाथों और घुटनों के बल खड़ा हो गया और मैं उस की पीठ पर सवार हो कर डाकखाने की ओर चला. मैं उस वक्त फूला न समाता था. और शायद कजाकी मुझ से भी ज्यादा खुश था.

बाबू जी ने कहा—कजाकी, तुम बहाल हो गए. अब कभी देर न करना.

कजाकी रोता हुआ पिता जी के पैरों पर गिर पड़ा; मगर शायद मेरे भाग्य में दोनों सुख भोगना न लिखा था—मुन्नू मिला, तो कजाकी छूटा; कजाकी आया तो मुन्नू हाथ से गया और ऐसा गया कि आज तक उस के जाने का दुख है.

मुन्नू मेरी ही थाली में खाता था. जब तक मैं खाने न बैठूं, वह भी कुछ न खाता था. उसे भात से बहुत ही रुचि थी; लेकिन जब तक खूब घी न पड़ा हो, उसे संतोष न होता था. वह मेरे ही साथ सोता था और मेरे ही साथ उठता भी था. सफाई तो उसे इतनी पसंद थी कि मलमूत्र त्याग करने के लिए घर से बाहर मैदान में निकल जाता था. कुत्तों से उसे चिढ़ थी, कुत्तों को घर में न घुसने देता. कुत्ते को देखते ही थाली से उठ जाता और उसे दौड़ कर घर से बाहर निकाल देता था.

कजाकी को डाकखाने में छोड़ कर जब मैं खाना खाने लगा, तो मुन्नू भी आ बैठा. अभी दोचार ही कौर खाए थे कि एक बड़ा सा झबरा कुत्ता आंगन में दिखाई दिया. मुन्नू उसे देखते ही दौड़ा. दूसरे घर में जा कर कुत्ता चूहा हो जाता है. झबरा कुत्ता उसे आते देख कर भागा.

मुन्नू को अब लौट आना चाहिए था; मगर वह कुत्ता उस के लिए यमराज का दूत था. मुन्नू को उसे घर से निकाल कर भी संतोष न हुआ. वह उसे घर के बाहर मैदान में भी दौड़ाने लगा. मुन्नू को शायद खयाल न रहा कि यहां मेरी अमलदारी नहीं है.

वह उस क्षेत्र में पहुंच गया था, जहां झबरे का भी उतना ही अधिकार था, जितना मुन्नू का. मुन्नू कुत्तों को भगातेभगाते कदाचित अपने बाहुबल पर घमंड करने लगा था. वह यह न समझता था कि घर में उस की पीठ पर घर के स्वामी का भय काम किया करता है.

झबरे ने इस मैदान में आते ही उलट कर मुन्नू की गरदन दबा दी. बेचारे मुन्नू के मुंह से आवाज तक न निकली. जब पड़ोसियों ने शोर मचाया, तो मैं दौड़ा. देखा, तो मुन्नू मरा पड़ा है और झबरे का कहीं पता नहीं.

सभ्यता का रहस्य

योंतो मेरी समझ में दुनिया की एक हजार एक बातें नहीं आतीं—जैसे लोग प्रातःकाल उठते ही बालों पर छुरा क्यों चलाते हैं? क्या अब पुरुषों में भी इतनी नजाकत आ गई है कि बालों का बोझ उन से नहीं संभलता? एक साथ ही सभी पढ़ेलिखे आदमियों की आंखें क्यों इतनी कमजोर हो गई हैं? दिमाग की कमजोरी ही इस का कारण है या और कुछ? लोग खिताबों के पीछे क्यों इतने हैरान होते हैं? इत्यादि—लेकिन इस समय मुझे इन बातों से मतलब नहीं.

मेरे मन में एक नया प्रश्न उठ रहा है और उस का जवाब मुझे कोई नहीं देता. प्रश्न है कि सभ्य कौन है और असभ्य कौन? सभ्यता के लक्षण क्या हैं?

सरसरी नजर से देखिए, तो इस से ज्यादा आसान और कोई सवाल ही न होगा. बच्चाबच्चा इस का समाधान कर सकता है. लेकिन जरा गौर से देखिए, तो प्रश्न इतना आसान नहीं जान पड़ता.

अगर कोटपतलून पहनना, टाई हैट कालर लगाना, मेज पर बैठ कर खाना खाना, दिन में तेरह बार कोको या चाय पीना और सिगार पीते हुए चलना सभ्यता है, तो उन गोरों को भी सभ्य कहना पड़ेगा, जो सड़क पर शाम को कभीकभी टहलते नजर आते हैं; शराब के नशे से आंखें सुर्ख, पैर लड़खड़ाते हुए, रास्ता चलने वालों को अनायास छेड़ने की धुन! क्या उन गोरों को सभ्य कहा जा सकता है? कभी नहीं. तो यह सिद्ध हुआ कि सभ्यता कोई और ही चीज है, उस का देह से इतना संबंध नहीं है जितना मन से.

2

मेरे इनेगिने मित्रों में एक राय रतनकिशोर भी हैं. आप बहुत ही सहृदय, बहुत ही उदार, बहुत अधिक शिक्षित और एक बड़े ओहदेदार हैं. बहुत अच्छा वेतन पाने पर भी उन की आमदनी खर्च के लिए काफी नहीं होती. एक चौथाई वेतन तो बंगले ही की भेंट हो जाता है. इसलिए आप बहुधा चिंतित रहते हैं.

रिश्वत तो नहीं लेते—कम से कम मैं नहीं जानता, हालांकि कहने वाले कहते हैं—लेकिन इतना जानता हूं कि वह भत्ता बढ़ाने के लिए दौरे पर बहुत रहते हैं, यहां तक कि इस के लिए हर साल बजट की किसी दूसरी मद से रुपए निकालने पड़ते हैं. उन के अफसर कहते हैं, इतने दौरे क्यों करते हो, तो जवाब देते हैं, इस जिले का काम ही ऐसा है कि जब तक खूब दौरे न किए जाएं रिआया शांत नहीं रह सकती. लेकिन मजा तो यह है कि राय

साहब उतने दौरे वास्तव में नहीं करते, जितने कि अपने रोजनामचे में लिखते हैं.

उन के पड़ाव शहर से 50 मील पर होते हैं. खेमे वहां गड़े रहते हैं, कैंप के अमले वहां पड़े रहते हैं और राय साहब घर पर मित्रों के साथ गपशप करते रहते हैं, पर किसी की मजाल है कि राय साहब की नेकनीयती पर संदेह कर सके! उन के सभ्य पुरुष होने में किसी को शंका नहीं हो सकती.

एक दिन मैं उन से मिलने गया. उस समय वह अपने घसियारे दमड़ी को डांट रहे थे. दमड़ी रातदिन का नौकर था, लेकिन घर रोटी खाने जाया करता था. उस का घर थोड़ी ही दूर पर एक गांव में था. कल रात को किसी कारण से यहां न आ सका. इसलिए डांट पड़ रही थी.

राय साहब—जब हम तुम्हें रातदिन के लिए रखे हुए हैं, तो तुम घर पर क्यों रहे? कल के पैसे कट जाएंगे.

दमड़ी—हुजूर, एक मेहमान आ गए थे, इसी से न आ सका.

राय साहब—तो कल के पैसे उसी मेहमान से लो.

दमड़ी—सरकार, अब कभी ऐसी खता न होगी.

राय साहब—बकबक मत करो.

दमड़ी—हुजूर....

राय साहब—दो रुपए जुरमाना.

दमड़ी रोता हुआ चला गया. रोजा बख्शाने आया था, नमाज गले पड़ गई. 2 रुपए जुरमाना ठुक गया. खता यही थी कि बेचारा कसूर माफ कराना चाहता था.

यह एक रात को गैरहाजिर होने की सजा थी! बेचारा दिन भर का काम कर चुका था, रात को यहां सोया न था, उस का दंड! और घर बैठे भत्ते उड़ाने वालों को कोई नहीं पूछता! कोई दंड नहीं देता. दंड तो मिले और ऐसा मिले कि जिंदगी भर याद रहे; पर पकड़ना तो मुश्किल है. दमड़ी भी अगर होशियार होता, तो रात रहे आ कर कोठरी में सो जाता. फिर किसे खबर होती कि वह रात को कहां रहा. पर गरीब इतना चंट न था.

3

दमड़ी के पास कुल छह बिस्से जमीन थी! पर इतने ही प्राणियों का खर्च भी था. उस के दो लड़के, दो लड़कियां और स्त्री, सब खेती में लगे रहते थे, फिर भी पेट की रोटियां मयस्सर नहीं होती थीं. इतनी जमीन क्या सोना उगल देती! अगर सब के सब घर से निकल मजदूरी करने लगते, तो आराम से रह सकते थे; लेकिन मौरूसी किसानमजदूर कहलाने का अपमान न सह सकता था.

इस बदनामी से बचने के लिए दो बैल बांध रखे थे! उस के वेतन का बड़ा भाग बैलों के दानेचारे ही में उड़ जाता था. ये सारी तकलीफें मंजूर थीं, खेती छोड़ कर मजदूर बन जाना मंजूर न था. किसान की जो प्रतिष्ठा है, वह कहीं मजदूर की हो सकती है, चाहे वह रुपया रोज ही क्यों न कमाए? किसानी के साथ मजदूरी करना इतने अपमान की बात नहीं, द्वार पर बंधे हुए बैल उस की मान रक्षा किया करते हैं, पर बैलों को बेच कर फिर कहां मुंह दिखलाने की जगह रह सकती है!

एक दिन राय साहब उसे सर्दी से कांपते देख कर बोले—कपड़े क्यों नहीं बनवाता? कांप क्यों रहा है?

दमड़ी—सरकार, पेट की रोटी तो पूरी ही नहीं पड़ती, कपड़े कहां से बनवाऊं?

राय साहब—बैलों को बेच क्यों नहीं डालता? सैकड़ों बार समझा चुका, लेकिन न जाने क्यों इतनी मोटी सी बात तेरी समझ में नहीं आती.

दमड़ी—सरकार, बिरादरी में कहीं मुंह दिखानेलायक न रहूंगा. लड़की की सगाई न हो पाएगी, टाट बाहर कर दिया जाऊंगा.

राय साहब—इन्हीं हिमाकतों से तुम लोगों की यह दुर्गति हो रही है. ऐसे आदमियों पर दया करना भी पाप है. (मेरी तरफ फिर कर) क्यों मुंशीजी, इस पागलपन का भी कोई इलाज है? जाड़ों मर रहे हैं, पर दरवाजे पर बैल जरूर बांधेंगे.

मैं ने कहा—जनाब, यह तो अपनीअपनी समझ है.

राय साहब—ऐसी समझ को दूर से सलाम कीजिए. मेरे यहां कई पुश्तों से जन्माष्टमी का उत्सव मनाया जाता था. कई हजार रुपयों पर पानी फिर जाता था. गाना होता था; दावतें होती थीं, रिश्तेदारों को न्योते दिए जाते थे, गरीबों को कपड़े बांटे जाते थे. वालिद साहब के बाद पहले ही साल मैं ने उत्सव बंद कर दिया. फायदा क्या?

—मुफ्त में चारपांच हजार की चपत पड़ती थी. सारे कसबे में बावेला मचा, आवाजें कसी गईं; किसी ने नास्तिक कहा, किसी ने ईसाई बनाया, लेकिन यहां इन बातों की क्या परवाह! आखिर थोड़े ही दिनों में सारा कोलाहल शांत हो गया. अजी, बड़ी दिल्लगी थी. कसबे में किसी के यहां शादी हो, लकड़ी मुझ से ले! पुश्तों से यह रस्म चली आती थी. वालिद तो दूसरों से दरख्त मोल ले कर इस रस्म को निभाते थे. थी हिमाकत या नहीं? मैं ने फौरन लकड़ी देना बंद कर दिया.

—इस पर भी लोग बहुत रोएधोए, दूसरों का रोनाधोना सुनूं, या अपना फायदा देखूं. लकड़ी से ही कम से कम 500 रुपए सालाना की बचत हो गई. अब कोई भूल कर भी इन चीजों के लिए दिक करने नहीं आता.

मेरे दिल में फिर सवाल पैदा हुआ, दोनों में कौन सभ्य है, कुल प्रतिष्ठा पर प्राण देने वाला मूर्ख दमड़ी; या धन पर कुल मर्यादा की बलि देने वाले राय रतन किशोर!

4

राय साहब के इजलास में एक बड़े मार्के का मुकदमा पेश था. शहर का एक रईस खून के मामले में फंस गया था. उस की जमानत के लिए राय साहब की खुशामदें होने लगीं. इज्जत की बात थी. रईस साहब का हुक्म था कि चाहे रियासत बिक जाए, पर इस मुकदमे से बेदाग निकल जाऊं.

डालियां लगाई गईं, सिफारिशें पहुंचाई गईं, पर राय साहब पर कोई असर न हुआ. रईस के आदमियों को प्रत्यक्ष रूप से रिश्वत की चर्चा करने की हिम्मत न पड़ती थी. आखिर जब कोई बस न चला, तो रईस की स्त्री ने राय साहब की स्त्री से मिल कर सौदा पटाने की ठानी.

रात के 10 बजे थे. दोनों महिलाओं में बातें होने लगीं. 20 हजार की बातचीत थी.

राय साहब की पत्नी तो इतनी खुश हुई कि उसी वक्त राय साहब के पास दौड़ी हुई आईं और कहने लगीं—ले लो, ले लो! तुम न लोगे, तो मैं ले लूंगी.

राय साहब ने कहा इतनी बेसब्र न हो. वह तुम्हें अपने दिल में क्या समझेगी? कुछ अपनी इज्जत का भी खयाल है या नहीं? माना कि रकम बड़ी है और इस से मैं एकबारगी तुम्हारी आए दिन की फरमाइशों से मुक्त हो जाऊंगा, लेकिन एक सिविलियन की इज्जत भी तो कोई मामूली चीज नहीं है. तुम्हें पहले बिगड़ कर कहना चाहिए था कि मुझ से ऐसी बेहूदी बातचीत करती हो, तो यहां से चली जाओ. मैं अपने कानों से नहीं सुनना चाहती.

स्त्री—यह तो मैं ने पहले ही किया, बिगड़ कर खूब खरीखोटी सुनाई. क्या इतना भी नहीं जानती? बेचारी मेरे पैरों पर सिर रख कर रोने लगी.

राय साहब—यह कहा था कि राय साहब से कहूंगी, तो मुझे कच्चा ही चबा जाएंगे?

यह कहते हुए राय साहब ने गद्‌गद हो कर पत्नी को गले लगा लिया.

स्त्री—अजी, मैं न जाने ऐसी कितनी ही बातें कह चुकी, लेकिन किसी तरह टाले नहीं टलती. रोरो कर जान दे रही है.

राय साहब—उस से वादा तो नहीं कर लिया?

स्त्री-वादा? मैं तो रुपए ले कर संदूक में रख आई. नोट थे.

राय साहब—कितनी जबरदस्त अहमक हो, न मालूम ईश्वर तुम्हें कभी समझ भी देगा या नहीं.

स्त्री—अब क्या देगा? देनी होती, तो दे न दी होती.

राय साहब—हां, मालूम तो ऐसा ही होता है. मुझ से कहा तक नहीं और रुपए ले कर संदूक में दाखिल कर लिए! अगर किसी तरह बात खुल जाए, तो कहीं का न रहूं.

स्त्री—तो भाई, सोच लो. अगर कुछ गड़बड़ हो तो, मैं जा कर रुपए लौटा दूं.

राय साहब—फिर वही हिमाकत! अरे, अब तो जो कुछ होना था, हो चुका. ईश्वर पर भरोसा कर के जमानत लेनी पड़ेगी. लेकिन तुम्हारी हिमाकत में शक नहीं. जानती हो, यह सांप के मुंह में उंगली डालना है. यह भी जानती हो कि मुझे ऐसी बातों से कितनी नफरत है, फिर भी बेसब्र हो जाती हो. अब की बार तुम्हारी हिमाकत से मेरा व्रत टूट रहा है. मैं ने दिल में ठान लिया था कि अब इस मामले में हाथ न डालूंगा, लेकिन तुम्हारी हिमाकत के मारे जब मेरी कुछ चलने भी पाए?

स्त्री—मैं जा कर लौटाए देती हूं.

राय साहब—और मैं जा कर जहर खाए लेता हूं.

इधर तो स्त्रीपुरुष में यह अभिनय हो रहा था, उधर दमड़ी उसी वक्त अपने गांव के मुखिया के खेत से जुआर काट रहा था. आज वह रातभर की छुट्टी ले कर घर गया था. बैलों के लिए चारे का एक तिनका भी नहीं है. अभी वेतन मिलने में कई दिन की देर थी, मोल ले न सकता था. घर वालों ने दिन में कुछ घास छील कर खिलाई तो थी, लेकिन ऊंट के मुंह में जीरा. उतनी घास से क्या हो सकता था.

दोनों बैल भूखे खड़े थे. दमड़ी को देखते ही दोनों पूंछें खड़ी कर के हुंकारने लगे. जब वह पास गया तो दोनों उस की हथेलियां चाटने लगे. बेचारा दमड़ी मन मसोस कर रह गया. सोचा, इस वक्त तो कुछ हो नहीं सकता; सबेरे किसी से कुछ उधार ले कर चारा

लाऊंगा.

लेकिन जब 11 बजे रात उस की आंखें खुलीं, तो देखा कि दोनों बैल अभी तक नांद पर खड़े हैं. चांदनी रात थी, दमड़ी को जान पड़ा कि दोनों उस की ओर अपेक्षा और याचना की दृष्टि से देख रहे हैं. उन की क्षुधा वेदना देख कर उस की आंखें सजल हो आईं.

किसान को अपने बैल अपने लड़कों की तरह प्यारे होते हैं, वह उन्हें पशु नहीं, अपना मित्र और सहायक समझता है. बैलों को भूखे खड़े देख कर नींद आंखों से भाग गई. कुछ सोचता हुआ उठा. हंसिया निकाली और चारे की फिक्र में चला. गांव के बाहर बाजरे और जुआर के खेत खड़े थे.

दमड़ी के हाथ कांपने लगे. लेकिन बैलों की याद ने उसे उत्तेजित कर दिया. चाहता, तो कई बोझ काट सकता था; लेकिन वह चोरी करते हुए भी चोर न था. उस ने केवल उतना ही चारा काटा, जितना बैलों को रात भर के लिए काफी हो. सोचा, अगर किसी ने देख भी लिया, तो उस से कह दूंगा, बैल भूखे थे, इसलिए काट लिया. उसे विश्वास था कि थोड़े से चारे के लिए कोई मुझे पकड़ नहीं सकता. मैं कुछ बेचने के लिए तो काट नहीं रहा हूं; फिर ऐसा निर्दयी कौन है, जो मुझे पकड़ ले. बहुत करेगा, अपने दाम ले लेगा.

उस ने बहुत सोचा. चारे का थोड़ा होना ही उसे चोरी के अपराध से बचाने को काफी था. चोर उतना काटता, जितना उस से उठ सकता. उसे किसी के फायदे और नुकसान से क्या मतलब? गांव के लोग दमड़ी को चारा लिए जाते देख कर बिगड़ते जरूर, पर कोई चोरी के इलजाम में न फंसाता, लेकिन संयोग से हलके के थाने का सिपाही उधर जा निकला. वह पड़ोस के एक बनिए के यहां जुआ होने की खबर पा कर कुछ ऐंठने की टोह में आया था.

दमड़ी को चारा सिर पर उठाते देखा, तो संदेह हुआ. इतनी रात गए कौन चारा काटता है? हो न हो, कोई चोरी से काट रहा है, डांट कर बोला—कौन चारा लिए जाता है? खड़ा रह!

दमड़ी ने चौंक कर पीछे देखा, तो पुलिस का सिपाही! हाथपांव फूल गए, कांपते हुए बोला—हुजूर, थोड़ा सा ही काटा है, देख लीजिए.

सिपाही—थोड़ा काटा हो या बहुत, है तो चोरी. खेत किस का है?

दमड़ी—बलदेव महतो का.

सिपाही ने समझा था, शिकार फंसा, इस से कुछ ऐंठूंगा; लेकिन वहां क्या रखा था. पकड़ कर गांव में लाया और जब वहां भी कुछ हत्थे चढ़ता न दिखाई दिया तो थाने ले गया. थानेदार ने चालान कर दिया. मुकदमा राय साहब ही के इजलास में पेश किया.

राय साहब ने दमड़ी को फंसे हुए देखा, तो हमदर्दी के बदले कठोरता से काम लिया. बोले—यह मेरी बदनामी की बात है. तेरा क्या बिगड़ा, साल छह महीने की सजा हो जाएगी, शर्मिंदा तो मुझे होना पड़ रहा है! लोग यही तो कहते होंगे कि राय साहब के आदमी ऐसे बदमाश और चोर हैं. तू मेरा नौकर न होता, तो मैं हलकी सजा देता; लेकिन तू मेरा नौकर है, इसलिए कड़ी से कड़ी सजा दूंगा. मैं यह नहीं सुन सकता कि राय साहब ने अपने नौकर के साथ रिआयत की.

यह कह कर राय साहब ने दमड़ी को छह महीने की सख्त कैद का हुक्म सुना दिया.

उसी दिन उन्होंने खून के मुकदमे में जमानत ले ली. मैं ने दोनों वृत्तांत सुने और मेरे दिल में यह खयाल और भी पक्का हो गया कि सभ्यता केवल हुनर के साथ ऐब करने का नाम है. आप बुरे से बुरा काम करें, लेकिन अगर आप उस पर परदा डाल सकते हैं, तो आप सभ्य हैं, सज्जन हैं, जेंटिलमैन हैं. अगर आप में यह सिफत नहीं तो आप असभ्य हैं, गंवार हैं, बदमाश हैं. यही सभ्यता का रहस्य है!

समस्या

मेरे दफ्तर में चार चपरासी हैं. उन में एक का नाम गरीब है. वह बहुत ही सीधा, बड़ा आज्ञाकारी, अपने काम में चौकस रहने वाला, घुड़कियां खा कर चुप रह जाने वाला यथा नाम तथा गुण वाला मनुष्य है. मुझे इस दफ्तर में साल भर हुआ है, मगर मैं ने उसे एक दिन के लिए भी गैरहाजिर नहीं पाया.

मैं उसे 9 बजे दफ्तर में अपनी फटी दरी पर बैठे हुए देखने का ऐसा आदी हो गया हूं कि मानो वह भी उसी इमारत का कोई अंग है. इतना सरल है कि किसी की बात टालना नहीं जानता. एक मुसलमान है. उस से सारा दफ्तर डरता है, मालूम नहीं क्यों? मुझे तो इस का कारण सिवाय उस की बड़ीबड़ी बातों के और कुछ नहीं मालूम होता.

उस के कथनानुसार उस के चचेरे भाई रामपुर रियासत में काजी हैं, फूफा टोंक की रियासत में कोतवाल हैं. उसे सर्वसम्मति ने 'काजी साहेब' की उपाधि दे रखी है. शेष दो महाशय जाति के ब्राह्मण हैं उन के आशीर्वादों का मूल्य उन के काम से कहीं अधिक है. ये तीनों कामचोर, गुस्ताख और आलसी हैं. कोई छोटा सा काम करने को भी कहिए तो बिना नाकभौं सिकोड़े नहीं करते.

क्लर्कों को तो कुछ समझते ही नहीं! केवल बड़े बाबू से कुछ दबते हैं, यद्यपि कभीकभी उन से भी झगड़ बैठते हैं. मगर इन सब दुर्गुणों के होते हुए भी दफ्तर में किसी की मिट्टी इतनी खराब नहीं है, जितनी बेचारे गरीब की. तरक्की का अवसर आता है, तो ये तीनों मार ले जाते हैं, गरीब को कोई पूछता भी नहीं. और सब दसदस पाते हैं, वह अभी छह ही में पड़ा हुआ है.

सुबह से शाम तक उस के पैर एक क्षण के लिए भी नहीं टिकते—यहां तक कि तीनों चपरासी उस पर हुकूमत जताते हैं और ऊपर की आमदनी में तो उस बेचारे का कोई भाग ही नहीं. तिस पर भी दफ्तर के सब कर्मचारी—दफ्तरी से ले कर बाबू तक सब—उस से चिढ़ते हैं. उस की कितनी ही बार शिकायतें हो चुकी हैं, कितनी ही बार जुर्माना हो चुका है और डांटडपट तो नित्य ही हुआ करती है.

इस का रहस्य कुछ मेरी समझ में न आता था. हां, मुझे उस पर दया अवश्य आती थी, और अपने व्यवहार से मैं यह दिखाना चाहता था कि मेरी दृष्टि में उस का आदर चपरासियों से कम नहीं. यहां तक कि कई बार मैं उस के पीछे अन्य कर्मचारियों से लड़ भी चुका हूं.

एक दिन बड़े बाबू ने गरीब से अपनी मेज साफ करने को कहा. वह तुरंत मेज साफ करने लगा. दैवयोग से झाड़न का झटका लगा, तो दवात उलट गई और रोशनाई मेज पर फैल गई.

बड़े बाबू यह देखते ही जामे से बाहर हो गए. उस के दोनों कान पकड़ कर खूब ऐंठे और भारतवर्ष की सभी प्रचलित भाषाओं से दुर्वचन चुनचुन कर उसे सुनाने लगे.

बेचारा गरीब आंखों में आंसू भरे चुपचाप मूर्तिवत खड़ा सुनता था, मानो उस ने कोई हत्या कर डाली हो.

मुझे बड़े बाबू का जरा सी बात पर इतना भयंकर रौद्र रूप धारण करना बुरा मालूम हुआ. यदि किसी दूसरे चपरासी ने इस से भी बड़ा कोई अपराध किया होता, तो भी उस पर इतना वज्र प्रहार न होता.

मैं ने अंगरेजी में कहा—बाबू साहब, आप यह अन्याय कर रहे हैं. उस ने जानबूझ कर तो रोशनाई गिराई नहीं. इस का इतना कड़ा दंड अनौचित्य की पराकाष्ठा है.

बाबूजी ने नम्रता से कहा—आप इसे जानते नहीं, बड़ा दुष्ट है.

‘मैं तो उस की कोई दुष्टता नहीं देखता.’

‘आप अभी उसे जानते नहीं, एक ही पाजी है. इस के घर दो हलों की खेती होती है, हजारों का लेनदेन करता है; कई भैंसें लगती हैं. इन्हीं बातों का इसे घमंड है.’

‘घर की ऐसी दशा होती, तो आप के यहां चपरासगिरी क्यों करता?’

‘विश्वास मानिए, बड़ा पोढ़ा आदमी है और बला का मक्खीचूस.’

‘यदि ऐसा ही हो, तो भी कोई अपराध नहीं है.’

‘अजी, अभी आप इन बातों को नहीं जानते. कुछ दिन और रहिए तो आप को स्वयं मालूम हो जाएगा कि यह कितना कमीना आदमी है.’

एक दूसरे महाशय बोल उठे—भाई साहब, इस के घर मनों दूधदही होता है, मनों मटर, जुवार, चने होते हैं, लेकिन इस की कभी इतनी हिम्मत न हुई कि कभी थोड़ा सा दफ्तर वालों को भी दे दे. यहां इन चीजों को तरस कर रह जाते हैं. तो फिर क्यों न जी जले? और यह सब कुछ इसी नौकरी की बदौलत हुआ है. नहीं तो पहले इस के घर में भूनी भांग न थी.

बड़े बाबू कुछ सकुचा कर बोले—यह कोई बात नहीं. उस की चीज है, किसी को दे या न दे; लेकिन यह बिलकुल पशु है.

मैं कुछकुछ मर्म समझ गया. बोला—यदि ऐसे तुच्छ हृदय का आदमी है, तो वास्तव में पशु ही है. मैं यह न जानता था.

अब बड़े बाबू भी खुले. संकोच दूर हुआ. बोले—इन सौगातों से किसी का उबार तो होता नहीं, केवल देने वाले की सहृदयता प्रकट होती है. और आशा भी उसी से की जाती है, जो इस योग्य होता है. जिस में सामर्थ्य ही नहीं, उस से कोई आशा नहीं करता. नंगे से कोई क्या लेगा?

रहस्य खुल गया. बड़े बाबू ने सरल भाव से सारी अवस्था दरशा दी थी. समृद्धि के शत्रु सब होते हैं, छोटे ही नहीं बड़े भी. हमारी ससुराल या ननिहाल दरिद्र हो, तो हम उस से आशा नहीं रखते! कदाचित वह हमें विस्मृत हो जाती हैं. किंतु वे सामर्थ्यवान हो कर हमें

न पूछें, हमारे यहां तीज और चौथ न भेजें, तो हमारे कलेजे पर सांप लोटने लगता है.

हम अपने निर्धन मित्र के पास जाएं, तो उस के एक बीड़े पान से ही संतुष्ट हो जाते हैं; पर ऐसा कौन मनुष्य है, जो अपने किसी धनी मित्र के घर से बिना जलपान के लौट कर उसे मन में कोसने न लगे और सदा के लिए उस का तिरस्कार न करने लगे. सुदामा कृष्ण के घर से यदि निराश लौटते, तो कदाचित वह उन के शिशुपाल और जरासंध से भी बड़े शत्रु होते. यह मानव स्वभाव है.

3

कई दिन पीछे मैं ने गरीब से पूछा—क्यों जी, तुम्हारे घर पर कुछ खेतीबारी होती है?

गरीब ने दीन भाव से कहा—हां, सरकार होती है. आप के दो गुलाम हैं, वही करते हैं.

‘गायें भैंसें भी लगती हैं?’

‘हां हुजूर; दो भैंसें लगती हैं, मुदा गायें अभी गाभिन नहीं हैं. हुजूर लोगों के ही दयाधरम से पेट की रोटियां चल जाती हैं.’

‘दफ्तर के बाबू लोगों की भी कभी कुछ खातिर करते हो?’

गरीब ने अत्यंत दीनता से कहा—हुजूर; मैं सरकार लोगों की क्या खातिर कर सकता हूं. खेती में जौ, चना, मक्का, जुवार के सिवाय और क्या होता है. आप लोग राजा हैं, यह छोटीमोटी चीजें किस मुंह से आप की भेंट करूं. जी डरता है, कहीं कोई डांट न बैठे कि इस टके के आदमी की इतनी मजाल. इसी के मारे बाबूजी, हियाव नहीं पड़ता. नहीं तो दूधदही की कौन बिसात थी. मुंह लायक बीड़ा तो होना चाहिए.

‘भला एक दिन कुछ लाके दो तो, देखो लोग क्या कहते हैं. शहर में ये चीजें कहां मयस्सर होती हैं. इन लोगों का जी कभीकभी मोटीझोटी चीजों पर चला करता है.’

‘जी सरकार, कोई कुछ कहे तो? कहीं कोई साहब से शिकायत कर दे तो मैं कहीं का न रहूं.’

‘इस का मेरा जिम्मा है, तुम्हें कोई कुछ न कहेगा. कोई कुछ कहेगा, तो मैं समझा दूंगा.’

‘तो हुजूर, आजकल तो मटर की फसल है. चने के साग भी हो गए हैं और कोल्हू भी खड़ा हो गया है. इस के सिवाय तो और कुछ नहीं है.’

‘बस, तो यही चीजें लाओ.’

‘कुछ उलटीसीधी पड़े, तो हुजूर ही संभालेंगे!’

‘हां जी, कह तो दिया कि मैं देख लूंगा.’

दूसरे दिन गरीब आया तो उस के साथ तीन हृष्टपुष्ट युवक भी थे. दो के सिरों पर टोकरियां थीं, उन में मटर की फलियां भरी हुई थीं. एक के सिर पर मटका था, उस में ऊख का रस था. तीनों ऊख का एकएक गट्ठर कांख में दबाए हुए थे.

गरीब आ कर चुपके से बरामदे के सामने पेड़ के नीचे खड़ा हो गया.

दफ्तर में आने का उसे साहस नहीं होता था, मानो कोई अपराधी वृक्ष के नीचे खड़ा था कि इतने में दफ्तर के चपरासियों और अन्य कर्मचारियों ने उसे घेर लिया. कोई ऊख ले कर चूसने लगा, कई आदमी टोकरी पर टूट पड़े, लूट मच गई. इतने में बड़े बाबू दफ्तर में

आ पहुंचे. यह कौतुक देखा तो उच्च स्वर में बोले—यह क्या भीड़ लगा रखी है, अपनाअपना काम देखो.

मैं ने जा कर उन के कान में कहा—गरीब अपने घर से यह सौगात लाया है. कुछ आप ले लीजिए, कुछ इन लोगों को बांट दीजिए.

बड़े बाबू ने कृत्रिम क्रोध धारण कर के कहा—क्यों गरीब, तुम ये चीजें यहां क्यों लाए? अभी ले जाओ, नहीं तो मैं साहब से रपट कर दूंगा. कोई हम लोगों को मलूका समझ लिया है.

गरीब का रंग उड़ गया. थरथर कांपने लगा. मुंह से एक शब्द भी नहीं निकला. मेरी ओर अपराधी नेत्रों से ताकने लगा.

मैं ने उस की ओर से क्षमाप्रार्थना की. बहुत कहनेसुनने पर बाबू साहब राजी हुए. सब चीजों में से आधीआधी अपने घर भिजवाईं. आधी में अन्य लोगों के हिस्से लगाए गए. इस प्रकार यह अभिनय समाप्त हुआ.

4

अब दफ्तर में गरीब का मान होने लगा. उसे नित्य घुड़कियां न मिलतीं; दिन भर दौड़ना न पड़ता, कर्मचारियों के व्यंग्य और अपने सहयोगियों के कटुवाक्य न सुनने पड़ते. चपरासी लोग स्वयं उस का काम कर देते.

उस के नाम में भी थोड़ा सा परिवर्तन हुआ. वह गरीब से गरीब दास बना. स्वभाव में कुछ तबदीली पैदा हुई. दीनता की जगह आत्मगौरव का उद्भव हुआ. तत्परता की जगह आलस्य ने ली.

वह अब कभी देर कर के दफ्तर आता, कभीकभी बीमारी का बहाना कर के घर बैठा रहता. उस के सभी अपराध अब क्षम्य थे. उसे अपनी प्रतिष्ठा का गुर हाथ लग गया था. वह अब दसवेंपांचवें दिन दूध, दही ला कर बड़े बाबू की भेंट किया करता. देवता को संतुष्ट करना सीख गया. सरलता के बदले अब उस में कांइयांपन आ गया.

एक रोज बड़े बाबू ने उसे सरकारी फार्मों का पार्सल छुड़ाने के लिए स्टेशन भेजा. कई बड़ेबड़े पुलिंदे थे. ठेले पर आए. गरीब ने ठेले वालों से 3 पैसे मजदूरी तय की थी. जब कागज दफ्तर में गए तो उस ने बड़े बाबू से 3 पैसे ठेले वालों को देने के लिए वसूल किए. लेकिन दफ्तर से कुछ दूर जा कर उस की नीयत बदली.

अपनी दस्तूरी मांगने लगा. ठेले वाले राजी न हुए. इस पर गरीब ने बिगड़ कर सब पैसे जेब में रख लिए और धमका कर बोला—अब एक फूटी कौड़ी भी न दूंगा. जाओ, जहां चाहे फरियाद करो. देखें, क्या बना लेते हो.

ठेले वालों ने जब देखा कि भेंट न देने से जमा ही गायब हुई जाती है तो रोधो कर चार आने पैसे देने पर राजी हुए. गरीब ने अठन्नी उन के हवाले की, 3 पैसे की रसीद लिखा कर उन के अंगूठे के निशान लगवाए और रसीद दफ्तर में दाखिल हो गई.

यह कुतूहल देख कर मैं दंग रह गया. यह वही गरीब है, जो कई महीने पहले सरलता और दीनता की मूर्ति था, जिसे कभी चपरासियों से भी अपने हिस्से की रकम मांगने का साहस न होता था, जो दूसरों को खिलाना भी न जानता था, खाने का तो जिक्र ही क्या.

यह स्वभावांतर देख कर अत्यंत खेद हुआ. इस का उत्तरदायित्व किस के सिर था? मेरे सिर, जिस ने उसे चघ्घड़पन और धूर्तता का पहला पाठ पढ़ाया था.

मेरे चित्त में प्रश्न उठा—इस कांइयांपन से, जो दूसरों का गला दबाता है, वह भोलापन क्या बुरा था, जो दूसरों का अन्याय सह लेता था. वह अशुभ मुहूर्त था, जब मैं ने उसे प्रतिष्ठा प्राप्ति का मार्ग दिखाया, क्योंकि वास्तव में वह उस के पतन का भयंकर मार्ग था. मैं ने बाह्य प्रतिष्ठा पर उस की आत्म प्रतिष्ठा का बलिदान कर दिया.

रियासत का दीवान

महाशय मेहता उन अभागों में थे, जो अपने स्वामी को प्रसन्न नहीं रख सकते थे. वह दिल से अपना काम करते थे और चाहते थे कि उन की प्रशंसा हो. वह यह भूल जाते थे कि वह काम के नौकर तो हैं ही, अपने स्वामी के सेवक भी हैं. जब उन के अन्य सहकारी स्वामी के दरबार में हाजिरी देते थे, तो वह बेचारे दफ्तर में बैठे कागजों से सिर मारा करते थे.

इस का फल यह था कि स्वामी के सेवक तो तरक्कियां पाते थे, पुरस्कार और पारितोषिक उड़ाते थे. और काम के सेवक किसी न किसी अपराध में निकाल दिए जाते थे.

ऐसे कटु अनुभव उन्हें अपने जीवन में कई बार हो चुके थे; इसलिए अब की जब राजा साहब सतिया ने उन्हें एक अच्छा पद प्रदान किया, तो उन्होंने प्रतिज्ञा की कि अब वह भी स्वामी का रुख देख कर काम करेंगे और उन के स्तुति गान में ही भाग्य की परीक्षा करेंगे और इस प्रतिज्ञा को उन्होंने कुछ इस तरह निभाया कि दो साल भी न गुजरे थे कि राजा साहब ने उन्हें अपना दीवान बना लिया.

एक स्वाधीन राज्य की दीवानी का क्या कहना! वेतन तो 500 रुपए मासिक ही था, मगर अख्तियार बड़े लंबे. राई का पर्वत करो, या पर्वत का राई, कोई पूछने वाला न था. राजा साहब भोगविलास में पड़े रहते थे, राज्य संचालन का सारा भार मि. मेहता पर था. रियासत के सभी अमले और कर्मचारी दंडवत करते, बड़ेबड़े रईस नजराने देते, यहां तक कि रानियां भी उन की खुशामद करतीं.

राजा साहब उग्र प्रकृति के मनुष्य थे, जैसे प्रायः राजे होते हैं. दुर्बलों के सामने शेर, सबलों के सामने भीगी बिल्ली. कभी मि. मेहता को डांट फटकार भी बताते; पर मेहता ने अपनी सफाई में एक शब्द भी मुंह से निकालने की कसम खा ली थी. सिर झुका कर सुन लेते. राजा साहब की क्रोधाग्नि ईंधन न पा कर शांत हो जाती.

गरमियों के दिन थे. पोलिटिकल एजेंट का दौरा था. राज्य में उन के स्वागत की तैयारियां हो रही थीं. राजा साहब ने मेहता को बुला कर कहा—मैं चाहता हूं, साहब बहादुर यहां से मेरा कलमा पढ़ते हुए जाएं.

मेहता ने सिर झुका कर विनीत भाव से कहा—चेष्टा तो ऐसी ही कर रहा हूं. अन्नदाता!

‘चेष्टा तो सभी करते हैं; मगर वह चेष्टा कभी सफल नहीं होती. मैं चाहता हूं, तुम दृढ़ता के साथ कहो—ऐसा ही होगा.’

‘ऐसा ही होगा.’

‘रुपए की परवाह मत करो.’
‘जो हुक्म.’
‘कोई शिकायत न आए; वरना तुम जानोगे.’
‘वह हुजूर को धन्यवाद देते जाएं तो सही.’
‘हां, मैं यही तो चाहता हूं.’
‘जान लड़ा दूंगा, दीनबंधु!’
‘अब मुझे संतोष है!’

इधर तो पोलिटिकल एजेंट का आगमन था, उधर मेहता का लड़का जयकृष्ण गरमियों कि छुट्टियां मनाने मातापिता के पास आया. किसी विश्वविद्यालय में पढ़ता था. एक बार 1932 में कोई उग्र भाषण करने के जुर्म में 6 महीने की सजा काट चुका था.

मि. मेहता की नियुक्ति के बाद जब वह पहली बार आया था तो राजा साहब ने उसे खासतौर पर बुलाया था और उस से जी खोल कर बातें की थीं, उसे अपने साथ शिकार खेलने ले गए और नित्य उस के साथ टेनिस खेला करते थे.

जयकृष्ण पर राजा साहब के साम्यवादी विचारों का बड़ा प्रभाव पड़ा था. उसे ज्ञात हुआ कि राजा साहब केवल देश भक्त ही नहीं, क्रांति के समर्थक भी हैं. रूस और फ्रांस की क्रांति पर दोनों में खूब बहस हुई थी. लेकिन अब की यहां उस ने कुछ और ही रंग देखा. रियासत के हर एक किसान और जमींदार से जबरन चंदा वसूल किया जा रहा था.

पुलिस गांवगांव चंदा उगाहती फिरती थी. रकम दीवान साहब नियत करते थे. वसूल करना पुलिस का काम था. फरियाद की कहीं सुनवाई न थी. चारों ओर त्राहित्राहि मची हुई थी. हजारों मजदूर सरकारी इमारतों की सफाई, सजावट और सड़कों की मरम्मत में बेगार कर रहे थे. बनियों से डंडों के जोर से रसद जमा की जा रही थी.

जयकृष्ण को आश्चर्य हो रहा था कि यह क्या हो रहा है. राजा साहब के विचार और व्यवहार में इतना अंतर कैसे हो गया. कहीं ऐसा तो नहीं है कि महाराज को इन अत्याचारों की खबर हो न ही, या उन्होंने जिन तैयारियों का हुक्म दिया हो, उन की तामील में कर्मचारियों ने अपनी कारगुजारी की धुन में यह अनर्थ कर डाला हो.

रात भर तो उस ने किसी तरह जब्त किया, प्रातः काल उस ने मेहताजी से पूछा—आप ने राजा साहब को इन अत्याचारों की सूचना नहीं दी?

मेहताजी को स्वयं इस अनीति से ग्लानि हो रही थी. वह स्वभावतः दयालु मनुष्य थे; लेकिन परिस्थितियों ने उन्हें अशक्त कर रखा था. दुखित स्वर में बोले—राजा साहब का यही हुक्म है, तो क्या किया जाए?

‘तो आप को ऐसी दशा में अलग हो जाना चाहिए था. आप जानते हैं, यह जो कुछ हो रहा है, उस की सारी जिम्मेदारी आप के सिर लादी जा रही है, प्रजा आप ही को अपराधी समझती है.’

‘मैं मजबूर हूं, मैं ने कर्मचारियों से बारबार संकेत किया कि यथासाध्य किसी पर सख्ती न की जाए; लेकिन हरेक स्थान पर मैं मौजूद तो नहीं रह सकता. अगर प्रत्यक्ष रूप से हस्तक्षेप करूं, तो शायद कर्मचारी लोग महाराज से मेरी शिकायत कर दें. ये लोग ऐसे ही अवसरों की ताक में तो रहते ही हैं. इन्हें तो जनता को लूटने का कोई बहाना चाहिए.

जितना सरकारी कोष में जमा करते हैं; उस से ज्यादा अपने घर में रख लेते हैं. मैं कुछ नहीं कर सकता.

जयकृष्ण ने उत्तेजित हो कर कहा—तो आप इस्तीफा क्यों नहीं दे देते?

मेहता लज्जित हो कर बोले—बेशक, मेरे लिए मुनासिब तो यही था; लेकिन जीवन में इतने धक्के खा चुका हूं कि अब और सहने की शक्ति नहीं रही. यह निश्चय है कि नौकरी कर के मैं अपने को बेदाग नहीं रख सकता. धर्म और अधर्म, सेवा और परमार्थ के झमेलों में पड़ कर मैं ने बहुत ठोकरें खाईं. मैं ने देख लिया कि दुनिया दुनियादारों के लिए है, जो अवसर और काल देख कर काम करते हैं. सिद्धांतवादियों के लिए यह अनुकूल स्थान नहीं है.

जयकृष्ण ने तिरस्कार भरे स्वर में पूछा—मैं राजा साहब के पास जाऊं.

'क्या तुम समझते हो, राजा साहब से ये बातें छिपी हैं?'

'संभव है, प्रजा की दुख कथा सुन कर उन्हें कुछ दया आए.'

मि. मेहता को इस में क्या आपत्ति हो सकती थी? वह तो खुद चाहते थे किसी तरह अन्याय का बोझ उन के सिर से उतर जाए. हां, यह भय अवश्य था कि और अधिकारों से हाथ न धोना पड़े. बोले—यह खयाल रखना कि तुम्हारे मुंह से कोई ऐसी बात न निकल जाए; जो महाराज को अप्रसन्न कर दे.

जयकृष्ण ने उन्हें आश्वासन दिया कि वह ऐसी कोई बात न करेगा. क्या वह इतना नादान है? मगर उसे क्या खबर थी कि आज के महाराजा साहब वह नहीं हैं, जो एक साल पहले थे, या संभव है, पोलिटिकल एजेंट के चले जाने के बाद वह फिर वही हो जाएं.

वह न जानता था कि उन के लिए क्रांति और आतंक की चर्चा भी उसी तरह विनोद की वस्तु थी, जैसी हत्या, बलात्कार या जाल की वारदातें, या रूप के बाजार के आकर्षक समाचार. जब उस ने ड्योढ़ी पर पहुंच कर अपनी इत्तला कराई, तो मालूम हुआ कि महाराज इस समय अस्वस्थ हैं, लेकिन वह लौट ही रहा था कि महाराज ने उसे बुला भेजा. शायद उस से सिनेमा संसार के ताजे समाचार पूछना चाहते थे.

उस के सलाम पर मुसकरा कर बोले—तुम खूब आए, भई, कहो एम. सी. सी. का मैच देखा या नहीं? मैं तो इन बखेड़ों में ऐसा फंसा कि जाने की नौबत नहीं आई. अब तो यही दुआ कर रहा हूं कि किसी तरह एजेंट साहब खुशखुश रुखसत हो जाएं. मैं ने भाषण लिखवाया है, वह जरा तुम भी देख लो. मैं ने इन राष्ट्रीय आंदोलनों की खूब खबर ली है और हरिजनोद्धार पर भी छींटे उड़ा दिए हैं.

जयकृष्ण ने अपने आवेश को दबा कर कहा—राष्ट्रीय आंदोलनों की आप ने खबर ली, यह अच्छा किया; लेकिन हरिजनोद्धार को तो सरकार भी पसंद करती है, इसीलिए उस ने महात्मा गांधी को रिहा कर दिया और जेल में भी उन्हें इस आंदोलन के संबंध में लिखनेपढ़ने और मिलनेजुलने की पूरी स्वाधीनता दे रखी थी.

राजा साहब ने तात्विक मुसकान के साथ कहा—तुम जानते नहीं हो, यह सब प्रदर्शन मात्र है. दिल में सरकार समझती है कि यह भी राजनैतिक आंदोलन है. वह इस रहस्य को बड़े ध्यान से देख रही है लायल्टी में जितना प्रदर्शन करो, चाहे वह औचित्य की सीमा के पार ही क्यों न हो जाए, उस का रंग चोखा ही होता है—उसी तरह जैसे कवियों की विरुदावली से हम फूल उठते हैं, चाहे वह हास्यास्पद ही क्यों न हो. हम ऐसे कवि को

खुशामदी समझें, अहमक भी समझ सकते हैं; पर उस से अप्रसन्न नहीं हो सकते. वह हमें जितना ही ऊंचा उठाता है, उतना ही वह हमारी दृष्टि में ऊंचा उठता जाता है.

राजा साहब ने अपने भाषण की एक प्रति मेज की दराज से निकाल कर जयकृष्ण के सामने रख दी, पर जयकृष्ण के लिए इस भाषण में अब कोई आकर्षण न था. अगर वह सभा चतुर होता, तो जाहिरदारी के लिए ही इस भाषण को बड़े ध्यान से पढ़ता. उन के शब्द विन्यास और भावोत्कर्ष की प्रशंसा करता और उस की तुलना महाराजा बीकानेर या पटियाला के भाषणों से करता; पर अभी दरबारी दुनिया की रीतिनीति से अनभिज्ञ था. जिस चीज को बुरा समझता था, उसे बुरा कहता था और जिस चीज को अच्छा समझता था, उसे अच्छा कहता था. बुरे को अच्छा और अच्छे को बुरा कहना अभी उसे न आया था.

उस ने भाषण पर सरसरी नजर डाल कर उसे मेज पर रख दिया और अपनी स्पष्टवादिता का बिगुल फूंकता हुआ बोला—मैं राजनीति के रहस्यों को भला क्या समझ सकता हूं लेकिन मेरा खयाल है कि चाणक्य के ये वंशज इन चालों को खूब समझते हैं और कृत्रिम भावों का उन पर कोई असर नहीं होता बल्कि इस से आदमी उन की नजरों में और भी गिर जाता है. अगर एजेंट को मालूम हो जाए कि उस के स्वागत के लिए प्रजा पर कितने जुल्म ढाए जा रहे हैं, तो शायद वह यहां से प्रसन्न हो कर न जाए. फिर मैं तो प्रजा की दृष्टि देखता हूं. एजेंट की प्रसन्नता आप के लिए लाभप्रद हो सकती है, प्रजा को तो उस से हानि ही होगी.

राजा साहब अपने किसी काम की आलोचना नहीं सह सकते थे. उन का क्रोध पहले जिरहों के रूप में निकलता, फिर तर्क का आकार धारण कर लेता और अंत में भूकंप के आवेश से उबल पड़ता था, जिस से उन का स्थूल शरीर, कुर्सी, मेज, दीवारें और छत सभी में भीषण कंपन होने लगता था. तिरछी आंखों से देख कर बोले—क्या हानि होगी, जरा सुनूं?

जयकृष्ण समझ गया कि क्रोध की मशीनगन चक्कर में है और घातक विस्फोट होने ही वाला है. संभल कर बोला—उसे आप मुझ से ज्यादा समझ सकते हैं.

'नहीं मेरी बुद्धि इतनी प्रखर नहीं है.'

'आप बुरा मान जाएंगे.'

'क्या तुम समझते हो, मैं बारूद का ढेर हूं?'

'बेहतर है, आप इसे न पूछें.'

'तुम्हें बतलाना पड़ेगा.'

और आप ही आप उन की मुट्ठियां बंध गईं.

'तुम्हें बतलाना पड़ेगा, इसी वक्त!'

जयकृष्ण यह धौंस क्यों सहने लगा? क्रिकेट के मैदान में राजकुमारों पर रोब जमाया करता था, बड़ेबड़े हुक्काम की चुटकियां लेता था. बोला—अभी आप के दिल में पोलिटिकल एजेंट का कुछ भय है, आप प्रजा पर जुल्म करते डरते हैं. जब वह आप के एहसानों से दब जाएगा, आप स्वछंद हो जाएंगे और प्रजा की फरियाद सुनने वाला कोई न रहेगा.

राजा साहब प्रज्वलित नेत्रों से ताकते हुए बोले—मैं एजेंट का गुलाम नहीं हूं कि उस से डरूं, कोई कारण नहीं है कि मैं उस से डरूं, बिलकुल कारण नहीं है. मैं पोलिटिकल एजेंट

की इसलिए खातिर करता हूं कि वह हिज मैजेस्टी का प्रतिनिधि है. मेरे और हिज मैजेस्टी के बीच में भाईचारा है, एजेंट केवल उन का दूत है. मैं केवल नीति का पालन कर रहा हूं. मैं विलायत जाऊं तो हिज मैजेस्टी भी इसी तरह मेरा सत्कार करेंगे!

—मैं डरूं क्यों? मैं अपने राज्य का स्वतंत्र राजा हूं. जिसे चाहूं, फांसी दे सकता हूं. मैं किसी से क्यों डरने लगा? डरना नामर्दों का काम है, मैं ईश्वर से भी नहीं डरता. डर क्या वस्तु है, यह मैं ने आज तक नहीं जाना. मैं तुम्हारी तरह कालेज का मुंहफट छात्र नहीं हूं कि क्रांति और आजादी की हांक लगाता फिरूं. तुम क्या जानो, क्रांति क्या चीज है?

—तुम ने केवल उस का नाम सुन लिया है. उस के लाल दृश्य आंखों से नहीं देखे. बंदूक की आवाज सुन कर तुम्हारा दिल कांप उठेगा. क्या तुम चाहते हो, मैं एजेंट से कहूं—प्रजा तबाह है, आप के आने की जरूरत नहीं. मैं इतना आतिथ्य शून्य नहीं हूं. मैं अंधा नहीं हूं, अहमक नहीं हूं, प्रजा की दशा का मुझे तुम से कहीं अधिक ज्ञान है, तुम ने उसे बाहर से देखा है, मैं उसे नित्य भीतर से देखता हूं.

—तुम मेरी प्रजा को क्रांति का स्वप्न दिखा कर उसे गुमराह नहीं कर सकते. तुम मेरे राज्य में विद्रोह और असंतोष के बीज नहीं बो सकते. तुम्हें अपने मुंह पर ताला लगाना होगा, तुम मेरे विरुद्ध एक शब्द भी मुंह से नहीं निकाल सकते, चूं भी नहीं कर सकते.....

डूबते हुए सूरज की किरणें महराबी दीवानखाने के रंगीन शीशों से हो कर राजा साहब के क्रोधोन्मत्त मुख मंडल को और भी रंजित कर रही थीं. उन के बाल नीले हो गए थे, आंखें पीली, चेहरा लाल और देह हरी.

मालूम होता था, प्रेतलोक का कोई पिशाच है. जयकृष्ण की सारी उद्दंडता हवा हो गई. राजा साहब को इस उन्माद की दशा में उस ने कभी न देखा था, लेकिन इस के साथ ही उस का आत्म गौरव इस ललकार का जवाब देने के लिए व्याकुल हो रहा था. जैसे विनय का जवाब विनय है, वैसे ही क्रोध का जवाब क्रोध है, जब वह आतंक और भय, अदब और लिहाज के बंधनों को तोड़ कर निकल पड़ता है.

उस ने भी राजा साहब को आग्नेय नेत्रों से देख कर कहा—मैं अपनी आंखों से यह अत्याचार देख कर मौन नहीं रह सकता.

राजा साहब ने आवेश से खड़े हो कर, मानो उस की गरदन पर सवार होते हुए कहा —तुम्हें यहां जबान खोलने का कोई हक नहीं है.

'प्रत्येक विचारशील मनुष्य को अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने का हक है. आप वह हक मुझ से नहीं छीन सकते!'

'मैं सब कुछ कर सकता हूं.'

'आप कुछ नहीं कर सकते.'

'मैं तुम्हें अभी जेल में बंद कर सकता हूं.'

'आप मेरा बाल भी बांका नहीं कर सकते.'

इसी वक्त मि. मेहता बदहवास से कमरे में आए और जयकृष्णा की ओर कोप भरी आंखें उठा कर बोले—कृष्णा, निकल जा यहां से, अभी मेरी आंखों से दूर हो जा और खबरदार! फिर मुझे अपनी सूरत न दिखाना. मैं तुझ जैसे कपूत का मुंह नहीं देखना चाहता. जिस थाल में खाता है, उसी में छेद करता है, बेअदब कहीं का! अब अगर जबान खोली, तो

मैं तेरा खून पी जाऊंगा.

जयकृष्ण ने हिंसा विक्षिप्त पिता को घृणा की आंखों से देखा और अकड़ता हुआ, गर्व से सिर उठाए, दीवानखाने के बाहर निकल गया.

राजा साहब ने कोच पर लेट कर कहा—बदमाश आदमी है, पल्ले सिरे का बदमाश! मैं नहीं चाहता कि ऐसा खतरनाक आदमी एक क्षण भी रियासत में रहे. तुम उस से जा कर कहो, इसी वक्त यहां से चला जाए वरना उस के हक में अच्छा न होगा. मैं केवल आप की मुरौवत से गम खा गया; नहीं तो इसी वक्त इस का मजा चखा सकता था. केवल आप की मुरौवत ने हाथ पकड़ लिया.

—आप को तुरंत निर्णय करना पड़ेगा, इस रियासत की दीवानी या लड़का. अगर दीवानी चाहते हो, तो तुरंत उसे रियासत से निकाल दो और कह दो कि फिर कभी मेरी रियासत में पांव न रखे. लड़के से प्रेम है, तो आज ही रियासत से निकल जाइए. आप यहां से कोई चीज नहीं ले जा सकते, एक पाई की भी चीज नहीं. जो कुछ है, वह रियासत की है. बोलिए, क्या मंजूर है?

मि. मेहता ने क्रोध के आवेश में जयकृष्ण को डांट तो बतलाई थी पर यह न समझे थे कि मामला इतना तूल खींचेगा. एक क्षण के लिए सन्नाटे में आ गए. सिर झुका कर परिस्थिति पर विचार करने लगे—राजा उन्हें मिट्टी में मिला सकता है. वह यहां बिलकुल बेबस हैं, कोई उन का साथी नहीं, कोई उन की फरियाद सुनने वाला नहीं. राजा उन्हें भिखारी बना कर छोड़ देगा. इस अपमान के साथ निकाले जाने की कल्पना कर के वह कांप उठे.

रियासत में उन के बैरियों की कमी न थी. सब के सब मूसलों ढोल बजाएंगे. जो आज उन के सामने भीगी बिल्ली बने हुए हैं, कल शेरों की तरह गुर्राएंगे. फिर इस उमर में अब उन्हें नौकर ही कौन रखेगा. निर्दयी संसार के सामने क्या फिर उन्हें हाथ फैलाना पड़ेगा? नहीं, इस से तो यह कहीं अच्छा है कि वह यहीं पड़े रहें. कंपित स्वर में बोले—मैं आज ही उसे घर से निकाल देता हूं, अन्नदाता!'

'आज नहीं, इसी वक्त!'

'इसी वक्त निकाल दूंगा!'

'हमेशा के लिए?'

'हमेशा के लिए.'

'अच्छी बात है, जाइए और आधे घंटे के अंदर मुझे सूचना दीजिए.'

मि. मिहता घर चले, तो मारे क्रोध के उन के पांव कांप रहे थे. देह में आग सी लगी हुई थी. इस लौंडे के कारण आज उन्हें कितना अपमान सहना पड़ा. गधा चला है यहां अपने साम्यवाद का राग अलापने. अब बच्चा को मालूम होगा, जबान पर लगाम न रखने का क्या नतीजा होता है.

मैं क्यों उस के पीछे गलीगली ठोकरें खाऊं. हां, मुझे यह पद और सम्मान प्यारा है क्यों न प्यारा हो? इस के लिए बरसों एड़िया रगड़ी हैं, अपना खून और पसीना एक किया है. यह अन्याय बुरा जरूर लगता है; लेकिन बुरी लगने की एक यही बात तो नहीं है! और हजारों बातें तो बुरी लगती हैं. जब किसी बात का उपाय मेरे पास नहीं, तो इस मुआमले के

पीछे क्यों अपनी जिंदगी खराब करूं?

उन्होंने घर आते ही आते पुकारा—जयकृष्ण!

सुनीता ने कहा—जयकृष्ण तो तुम से पहले ही राजा साहब के पास गया था. तब से यहां कब आया?

'अब तक यहां नहीं आया. वह तो मुझ से पहले ही चल चुका था.'

वह फिर बाहर आए और नौकरों से पूछना शुरू किया. अब भी उस का पता न था. मारे डर के कहीं छिपा होगा और राजा ने आध घंटे में इत्तला देने का हुक्म दिया है. यह लौंडा न जाने क्या करने पर लगा हुआ है. आप तो जाएगा ही मुझे भी अपने साथ ले डूबेगा.

सहसा एक सिपाही ने एक पुरजा ला कर उन के हाथ में रख दिया. अच्छा, यह तो जयकृष्ण की लिखावट है. क्या कहता है—इस दुर्दशा के बाद मैं इस रियासत में एक क्षण भी नहीं रह सकता. मैं जाता हूं. आप को अपना पद और मान अपनी आत्मा से ज्यादा प्रिय है, आप खुशी से उन का उपभोग कीजिए. मैं फिर आप को तकलीफ देने न आऊंगा. अम्मां से मेरा प्रणाम कहिएगा.

मेहता ने पुरजा ला कर सुनीता को दिखाया और खिन्न हो कर बोले—इसे न जाने कब समझ आएगी, लेकिन बहुत अच्छा हुआ. जब लाला को मालूम होगा, दुनिया में किस तरह रहना चाहिए. बिना ठोकरें खाए, आदमी की आंखें नहीं खुलतीं. मैं ऐसे तमाशे बहुत खेल चुका, अब इस खुराफात के पीछे अपना शेष जीवन नहीं बरबाद करना चाहता—और तुरंत राजा साहब को सूचना देने चले.

2

दम के दम में सारी रियासत में यह समाचार फैल गया. जयकृष्ण अपने शील स्वभाव के कारण जनता में बड़ा प्रिय था. लोग बाजारों और चौरस्तों पर खड़े होहो कर इस कांड पर आलोचना करने लगे—अजी, वह आदमी नहीं था, भाई, उसे किसी देवता का अवतार समझो.

महाराज के पास जा कर बेधड़क बोला—अभी बेगार बंद कीजिए वरना शहर में हंगामा हो जाएगा. राजा साहब की तो जबान बंद हो गई. बगलें झांकने लगे. शेर है शेर! उम्र तो कुछ नहीं; पर आफत का परकाला है. और वह यह बेगार बंद करा के रहता, हमेशा के लिए. राजा साहब को भागने की राह न मिलती. सुना, घिघियाने लगे थे. मुदा इसी बीच में दीवान साहब पहुंच गए और उसे देश निकाले का हुक्म दे दिया. यह हुक्म सुन कर उस की आंखों में खून उतर आया था, लेकिन बाप का अपमान न किया.

'ऐसे बाप को तो गोली से मार देना चाहिए. बाप है या दुश्मन!'

'वह कुछ भी हो, है तो बाप ही.'

सुनीता सारे दिन बैठी रोती रही. जैसे कोई उस के कलेजे में बर्छियां चुभो रहा था. बेचारा न जाने कहां चला गया. अभी जलपान तक न किया था. चूल्हे में जाए ऐसा भोगविलास, जिस के पीछे उसे बेटे को त्यागना पड़े. हृदय में ऐसा उद्वेग उठा कि उसी दम पति और घर को छोड़ कर रियासत से निकल जाए, जहां ऐसे नर पिशाचों का राज्य है.

इन्हें अपनी दीवानी प्यारी है, उसे ले कर रहें. वह अपने पुत्र के साथ उपवास करेगी, पर उसे आंखों से देखती तो रहेगी.

एकाएक वह उठ कर महारानी के पास चली! वह उन से फरियाद करेगी, उन्हें भी ईश्वर ने बालक दिए हैं. उन्हें क्या एक अभिमानी माता पर दया न आएगी? इस के पहले भी वह कई बार महारानी के दर्शन कर चुकी थी. उस का मुरझाया हुआ मन आशा से लहलहा उठा.

लेकिन रनिवास में पहुंची तो देखा कि महारानी के तेवर भी बदले हुए हैं. उसे देखते ही बोली—तुम्हारा लड़का बड़ा उजड्ड है. जरा भी अदब नहीं. किस से किस तरह बात करनी चाहिए, इस का जरा भी सलीका नहीं. न जाने विश्वविद्यालय में क्या पढ़ा करता है. आज महाराज से उलझ बैठा. कहता था कि बेगार बंद कर दीजिए और एजेंट साहब के स्वागतसत्कार की कोई तैयारी न कीजिए. इतनी समझ भी उसे नहीं है कि इस तरह कोई राजा कै घंटे गद्दी पर रह सकता है.

—एजेंट बहुत बड़ा अफसर न सही; लेकिन है तो बादशाह का प्रतिनिधि. उस का आदरसत्कार करना तो हमारा धर्म है. फिर ये बेगार किस दिन काम आएंगे. उन्हें रियासत से जागीरें मिली हुई हैं. किस दिन के लिए? प्रजा में विद्रोह की आग भड़काना कोई भले आदमी का काम है? जिस पत्तल में खाओ, उसी में छेद करो. महाराज ने दीवान साहब का मुलाहिजा किया, नहीं तो उसे हिरासत में डलवा देते! अब बच्चा नहीं है. खासा पांच हाथ का जवान है.

—सब कुछ देखता और समझता है. हम हाकिमों से बैर करें, तो कै दिन निबाह हो. उस का क्या बिगड़ता है. कहीं सौपचास की चाकरी पा जाएगा. यहां तो करोड़ों की रियासत बरबाद हो जाएगी.

सुनीता ने आंचल फैला कर कहा—महारानी बहुत सत्य कहती हैं; पर अब तो उस का अपराध क्षमा कीजिए बेचारा लज्जा और भय के मारे घर नहीं गया. न जाने किधर चला गया. हमारे जीवन का यही एक अवलंब है, महारानी! हम दोनों रोरो कर मर जाएंगे. आंचल फैला कर आप से भीख मांगती हूं, उस को क्षमादान दीजिए. माता के हृदय को आप से ज्यादा और कौन समझेगा; आप महाराज से सिफारिश कर दें...

महारानी ने अपनी बड़ीबड़ी आंखों से उस की ओर देखा मानो वह कोई बड़ी अनोखी बात कह रही हो और अपने रंगे हुए होंठों पर अंगूठियों से जगमगाती हुई उंगली रख कर बोली—क्या कहती हो, सुनीता देवी! उस युवक की महाराज से सिफारिश करूं जो हमारी जड़ खोदने पर तुला हुआ है? आस्तीन में सांप पालूं? तुम किस मुंह ऐसी बात कहती हो? और महाराज मुझे क्या कहेंगे? ना मैं इस के बीच में न पड़ूंगी. उस ने जो बीज बोए हैं; उन का वह फल खाए. मेरा लड़का ऐसा नालायक होता, तो उस का मुंह न देखती. और तुम ऐसे बेटे की सिफारिश करती हो?

सुनीता ने आंखों में आंसू भर कर कहा—महारानी, ऐसी बातें आप के मुंह से शोभा नहीं देतीं.

महारानी मसनद की टेक छोड़ कर उठ बैठीं और तिरस्कार भरे स्वर में बोलीं—अगर तुम ने सोचा था कि मैं तुम्हारे आंसू पोछूंगी, तो तुम ने भूल की. हमारे द्रोही की सिफारिश

ले कर हमारे पास आना, इस के सिवा और क्या है कि तुम उस के अपराध को बालक्रीड़ा समझ रही हो. अगर तुम ने अपराध की भीषणता का ठीक अनुमान किया होता, तो मेरे पास कभी न आती. जिस ने इस रियासत का नमक खाया हो, वह रियासत के द्रोही की पीठ सहलाए! वह स्वयं राजद्रोही है! इस के सिवा और क्या कहूं?

सुनीता भी गरम हो गई. पुत्र स्नेह म्यान से बाहर निकल आया. बोली—राजा का कर्त्तव्य केवल अपने अफसरों को प्रसन्न करना नहीं है. प्रजा को पालने की जिम्मेदारी इस से कहीं बढ़ कर है.

उसी समय महाराज ने कमरे में कदम रखा. रानी ने उठ कर स्वागत किया और सुनीता सिर झुकाए निस्पंद खड़ी रह गई.

राजा ने व्यंग्यपूर्ण मुसकान के साथ पूछा—यह कौन महिला तुम्हें राजा के कर्त्तव्य का उपदेश दे रही थी?

रानी ने सुनीता की ओर आंख मार कर कहा—यह दीवान साहब की धर्मपत्नी हैं.

राजा साहब की त्योरियां चढ़ गईं. होंठ चबा कर बोले—जब मां ऐसी पैनी छुरी है, तो लड़का क्यों न जहर का बुझाया हुआ हो. देवीजी, मैं तुम से यह शिक्षा नहीं लेना चाहता कि राजा का अपनी प्रजा के साथ क्या धर्म है. यह शिक्षा मुझे कई पीढ़ियों से मिलती चली आई है. बेहतर हो कि तुम किसी से यह शिक्षा प्राप्त कर लो कि स्वामी के प्रति उस के सेवक का क्या धर्म है और जो नमकहराम है, उस के साथ स्वामी को कैसा व्यवहार करना चाहिए.

यह कहते हुए राजा साहब उसी उन्माद की दशा में बाहर चले गए.

मि. मेहता घर जा रहे थे, राजा साहब ने कठोर स्वर में पुकारा—सुनिए मि. मेहता! आप के सपूत तो विदा हो गए लेकिन मुझे अभी मालूम हुआ कि आप की देवीजी राजद्रोह के मैदान में उन से भी दो कदम आगे हैं; बल्कि मैं तो कहूंगा, वह केवल रेकार्ड है, जिस में देवीजी की आवाज ही बोल रही है.

—मैं नहीं चाहता कि जो व्यक्ति रियासत का संचालक हो, उस के साए में रियासत के विद्रोहियों को आश्रय मिले. आप खुद इस दोष से मुक्त नहीं हो सकते. यह हरगिज मेरा अन्याय न होगा, यदि मैं यह अनुमान कर लूं कि आप ही ने यह मंत्र फूंका है.

मि. मेहता अपनी स्वामिभक्ति पर यह आक्षेप न सह सके. व्यथित कंठ से बोले—यह तो मैं किस जबान से कहूं कि दीनबंधु इस विषय में मेरे साथ अन्याय कर रहे हैं, लेकिन मैं सर्वथा निर्दोष हूं और मुझे यह देख कर दुख होता है कि मेरी वफादारी पर यों संदेह किया जा रहा है.

‘वफादारी केवल शब्दों से नहीं होती.’

‘मेरा खयाल है कि मैं इस का प्रमाण दे चुका.’

‘नईनई दलीलों के लिए नएनए प्रमाणों की जरूरत है. आप के पुत्र के लिए जो दंड विधान था, वही आप की स्त्री के लिए भी है. मैं इस में किसी भी तरह का उज्र नहीं चाहता. और इसी वक्त इस हुक्म की तामील होनी चाहिए!’

‘लेकिन दीनानाथ…’

‘मैं एक शब्द भी नहीं सुनना चाहता.’

‘मुझे कुछ निवेदन करने की आज्ञा न मिलेगी?’

‘बिलकुल नहीं, यह मेरा आखिरी हुक्म है.’

मि. मेहता यहां से चले, तो उन्हें सुनीता पर बेहद गुस्सा आ रहा था. इन सभी को न जाने क्या सनक सवार हो गई है. जयकृष्ण तो खैर बालक है, बेसमझ है, इस बुढ़िया को क्या सूझी. न जाने रानी साहब से जा कर क्या कह आई. किसी को मुझ से हमदर्दी नहीं, सब अपनीअपनी धुन में मस्त हैं. किस मुसीबत से मैं अपनी जिंदगी के दिन काट रहा हूं यह कोई नहीं समझता.

कितनी निराशा और विपत्तियों के बाद यहां जरा निश्चिंत हुआ था कि इन सभी ने यह नया तूफान खड़ा कर दिया. न्याय और सत्य का ठीका क्या हमीं ने लिया है? यहां भी वही हो रहा है, जो सारी दुनिया में हो रहा है! कोई नई बात नहीं है.

संसार में दुर्बल और दरिद्र होना पाप है. इस की सजा से कोई बच नहीं सकता. बाज कबूतर पर कभी दया नहीं करता. सत्य और न्याय का समर्थन मनुष्य की सज्जनता और सभ्यता का एक अंग है. बेशक इस से कोई इनकार नहीं कर सकता; लेकिन जिस तरह और सभी प्राणी केवल मुख से इस का समर्थन करते हैं, क्या उसी तरह हम भी नहीं कर सकते. और जिन लोगों का पक्ष लिया जाए, वे भी तो कुछ इस का महत्त्व समझें.

आज राजा साहब इन्हीं बेगारों से जरा हंस कर बातें करें, तो वे अपने सारे दुखड़े भूल जाएंगे और उलटे हमारे ही शत्रु बन जाएंगे. शायद सुनीता महारानी के पास जा कर अपने दिल का बुखार निकाल आई है. गधी यह नहीं समझती कि दुनिया में किसी तरह मानमर्यादा का निर्वाह करते हुए जिंदगी काट लेना ही हमारा धर्म है.

अगर भाग्य में यश और कीर्ति बदी होती, तो इस तरह दूसरों की गुलामी क्यों करता? लेकिन समस्या यह है कि इसे भेजूं कहां! मैके में कोई है नहीं, मेरे घर में कोई है नहीं. उंह! अब मैं इस चिंता में कहां तक मरूं. जहां जी चाहे जाए, जैसा किया वैसा भोगे.

वह इसी क्षोभ और ग्लानि की दशा में घर में गए और सुनीता से बोले—आखिर तुम्हें भी वही पागलपन सूझा, जो उस लौंडे को सूझा था. मैं कहता हूं, आखिर तुम्हें कभी समझ आएगी या नहीं? क्या सारे संसार के सुधार का बीड़ा हमीं ने उठाया है? कौन राजा ऐसा है, जो अपनी प्रजा पर जुल्म न करता हो, उन के स्वत्वों का अपहरण न करता हो. राजा ही क्यों, हम तुम सभी तो दूसरों पर अन्याय कर रहे हैं. तुम्हें क्या हक है कि तुम दर्जनों खिदमतगार रखो और उन्हें जराजरा सी बात पर सजा दो?

—न्याय और सत्य निरर्थक शब्द हैं, जिन की उपयोगिता इस के सिवा और कुछ नहीं कि बुद्धुओं की गरदन मारी जाए और समझदारों की वाहवाह हो. तुम और तुम्हारा लड़का उन्हीं बुद्धुओं में हैं. और इस का दंड तुम्हें भोगना पड़ेगा. महाराज का हुक्म है कि तुम तीन घंटे के अंदर रियासत से निकल जाओ नहीं तो पुलिस आ कर तुम्हें निकाल देगी. मैं ने तो तय कर लिया है कि राजा साहब की इच्छा के विरुद्ध एक शब्द भी मुंह से न निकालूंगा.

—न्याय का पक्ष ले कर देख लिया है. हैरानी और अपमान के सिवा और कुछ हाथ न आया. जिन की हिमायत की थी, वे आज भी उसी दशा में हैं; बल्कि उस से भी और बदतर. मैं साफ कहता हूं कि मैं तुम्हारी उद्दंडताओं का तावान देने के लिए तैयार नहीं. मैं गुप्त रूप

से तुम्हारी सहायता करता रहूंगा. इस के सिवा मैं और कुछ नहीं कर सकता.

सुनीता ने गर्व के साथ कहा—मुझे तुम्हारी सहायता की जरूरत नहीं. कहीं भेद खुल जाए, तो दीनबंधु तुम्हारे ऊपर कोप का बज्र गिरा दें. तुम्हें अपना पद और सम्मान प्यारा है, उस का आनंद से उपभोग करो. मेरा लड़का और कुछ न कर सकेगा, तो पाव भर आटा तो कमा ही लाएगा. मैं भी देखूंगी कि तुम्हारी स्वामिभक्ति कब तक निभती है और कब तक तुम अपनी आत्मा की हत्या करते हो.

मेहता ने तिलमिला कर कहा—क्या तुम चाहती हो कि फिर उसी तरह चारों तरफ ठोकरें खाता फिरूं?

सुनीता ने घाव पर नमक छिड़का—नहीं, कदापि नहीं. अब तक तो मैं समझती थी, तुम्हें ठोकरें खाने में मजा आता है तथा पद और अधिकार से भी मूल्यवान कोई वस्तु तुम्हारे पास है, जिस की रक्षा के लिए तुम ठोकरें खाना अच्छा समझते हो. अब मालूम हुआ; तुम्हें अपना पद अपनी आत्मा से भी प्रिय है. फिर क्यों ठोकरें खाओ; मगर कभीकभी अपना कुशल समाचार तो भेजते रहोगे, या राजा साहब की आज्ञा लेनी पड़ेगी?

'राजा साहब इतने न्याय शून्य हैं कि मेरे पत्रव्यवहार में रोकटोक करें?'

'अच्छा! राजा साहब में इतनी आदमीयत है? मुझे तो विश्वास नहीं आता.'

'तुम अब भी अपनी गलती पर लज्जित नहीं हो?'

'मैं ने कोई गलती नहीं की. मैं तो ईश्वर से चाहती हूं कि जो मैं ने आज किया, वह बारबार करने का मुझे अवसर मिले.'

मेहता ने अरुचि के साथ पूछा—तुम ने कहां जाने का इरादा किया है?

'जहन्नुम में!'

'गलती आप करती हो, गुस्सा मुझ पर उतारती हो?'

'मैं तुम्हें इतना निर्लज्ज न समझती थी!'

'मैं भी इसी शब्द का तुम्हारे लिए प्रयोग कर सकता हूं.'

'केवल मुख से, मन से नहीं.'

मि. मेहता लज्जित हो गए.

3

जब सुनीता की विदाई का समय आया, तो स्त्रीपुरुष दोनों खूब रोए और एक तरह से सुनीता ने अपनी भूल स्वीकार कर ली. वास्तव में इस बेकारी के दिनों में मेहता ने जो कुछ किया; वही उचित था, बेचारे कहां मारेमारे फिरते.

पोलिटिकल एजेंट साहब पधारे और कई दिनों तक खूब दावतें खाईं और खूब शिकार खेला. राजा साहब ने उन की तारीफ की. उन्होंने राजा साहब की तारीफ की. राजा साहब ने उन्हें अपनी लायल्टी का विश्वास दिलाया, उन्होंने सतिया राज्य को आदर्श कहा और राजा साहब को न्याय और सेवा का अवतार स्वीकार किया और तीन दिन में रियासत को ढाई लाख की चपत दे कर विदा हो गए!

मि. मेहता का दिमाग आसमान पर था. सभी उन की कारगुजारी की प्रशंसा कर रहे थे. एजेंट साहब तो उन की दक्षता पर मुग्ध हो गए. उन्हें 'राय साहब' की उपाधि मिली

और उन के अधिकारों में भी वृद्धि हुई. उन्होंने अपनी आत्मा को उठा कर ताक पर रख दिया था. उन की यह साधना कि महाराज और एजेंट दोनों उन से प्रसन्न रहें, संपूर्ण रीति से पूरी हो गई. रियासत में ऐसा स्वामी भक्त सेवक दूसरा न था.

राजा साहब अब कम से कम तीन साल के लिए निश्चिंत थे. एजेंट खुश हैं, तो फिर किस का भय! कामुकता, लंपटता और भांतिभांति के दुर्व्यसनों की लहर प्रचंड हो उठी. सुंदरियों की टोह लगाने के लिए सुरागरसानों का एक विभाग खुल गया, जिस का संबंध सीधे राजा साहब से था.

एक बूढ़ा, खुर्राट, जिस का पेशा हिमालय की परियों को फंसा कर राजाओं को लूटना था और जो इसी पेशे की बदौलत राजदरबारों में पूजा जाता था, इस विभाग का अध्यक्ष बना दिया गया.

नईनई चिड़ियां आने लगीं. भय, लोभ और सम्मान सभी अस्त्रों से शिकार खेला जाने लगा; लेकिन एक ऐसा अवसर भी पड़ा, जहां इस तिकड़म की सारी सामूहिक और वैयक्तिक चेष्टाएं निष्फल हो गईं और गुप्त विभाग ने निश्चय किया कि इस बालिका को किसी तरह उड़ा लाया जाए. और इस महत्त्वपूर्ण कार्य के संपादन का भार मि. मेहता पर रखा गया, जिन से ज्यादा स्वामिभक्त सेवक रियासत में दूसरा न था. उन के ऊपर महाराज साहब को पूरा विश्वास था.

दूसरों के विषय में संदेह था कि कहीं रिश्वत ले कर शिकार बहका दें, या भंडाफोड़ कर दें, या अमानत में खयानत कर बैठें. मेहता की ओर से किसी तरह भी उन बातों की शंका न थी. रात को नौ बजे उन की तलबी हुई—अन्नदाता ने हुजूर को याद किया है.

मेहता साहब ड्योढ़ी पर पहुंचे, तो राजा साहब पाईबाग में टहल रहे थे. मेहता को देखते ही बोले—आइए मि. मेहता, आप से एक खास बात में सलाह लेनी है. यहां कुछ लोगों की राय है कि सिंहद्वार के सामने आप की एक प्रतिमा स्थापित की जाए, जिस से चिरकाल तक आप की यादगार कायम रहे. आप को तो शायद इस में कोई आपत्ति न होगी. और यदि हो भी तो लोग इस विषय में आप की अवज्ञा करने को भी तैयार हैं. सतिया की आप ने जो अमूल्य सेवा की है, उस का पुरस्कार तो कोई क्या दे सकता है, लेकिन जनता के हृदय में आप के प्रति जो श्रद्धा है, उसे तो वह किसी न किसी रूप में प्रकट ही करेगी.

मेहता ने बड़ी नम्रता से कहा—यह अन्नदाता की गुणग्राहकता है, मैं तो एक तुच्छ सेवक हूं. मैं ने जो कुछ किया, यह इतना ही है कि नमक का हक अदा करने का सदैव प्रयत्न किया, मगर मैं इस सम्मान के योग्य नहीं हूं.

राजा साहब ने कृपालु भाव से हंस कर कहा—आप योग्य हैं या नहीं इस का निर्णय आप के हाथ में नहीं है मि. मेहता, आप की दीवानी यहां न चलेगी. हम आप का सम्मान नहीं कर रहे हैं, अपनी भक्ति का परिचय दे रहे हैं. थोड़े दिनों में न हम रहेंगे, न आप रहेंगे, उस वक्त भी यह प्रतिमा अपनी मूक वाणी से कहती रहेगी कि पिछले लोग अपने उद्धारकों का आदर करना जानते थे. मैं ने लोगों से कह दिया है कि चंदा जमा करें. एजेंट ने अब की जो पत्र लिखा है, उस में आप को खास तौर से सलाम लिखा है.

मेहता ने जमीन में गड़ कर कहा—यह उन की उदारता है, मैं तो जैसा आप का सेवक हूं, वैसा ही उन का भी सेवक हूं.

राजा साहब कई मिनट तक फूलों की बहार देखते रहे. फिर इस तरह बोले, मानो कोई भूली हुई बात याद आ गई हो—तहसील खास में एक गांव लगनपुर है, आप कभी वहां गए हैं?

'हां अन्नदाता! एक बार गया हूं, वहां एक धनी साहूकार है. उसी के दीवानखाने में ठहरा था. अच्छा आदमी है.'

'हां, ऊपर से बहुत अच्छा आदमी है; लेकिन अंदर से पक्का पिशाच. आप को शायद मालूम न हो, इधर कुछ दिनों से महारानी का स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया है और मैं सोच रहा हूं कि उन्हें किसी सैनेटोरियम में भेज दूं. वहां सब तरह की चिंताओं एवं झंझटों से मुक्त हो कर वह आराम से रह सकेंगी, लेकिन रनिवास में एक रानी का रहना लाजिम है! अफसरों के साथ उन की लेडियां भी आती हैं, और भी कितने अंगरेज मित्र अपनी लेडियों के साथ मेरे मेहमान होते रहते हैं. कभी राजेमहाराजे भी रानियों के साथ आ जाते हैं. रानी के बगैर लेडियों का आदरसत्कार कौन करेगा?

'मेरे लिए यह वैयक्तिक प्रश्न नहीं, राजनैतिक समस्या है, और शायद आप भी मुझ से सहमत होंगे, इसलिए मैं ने दूसरी शादी करने का इरादा कर लिया है. उस साहूकार की एक लड़की है, जो कुछ दिनों अजमेर में शिक्षा पा चुकी है. मैं एक बार उस गांव से हो कर निकला, तो मैं ने उसे अपने घर की छत पर खड़ी देखा. मेरे मन में तुरंत भावना उठी कि अगर यह रमणी रनिवास में आ जाए, तो रनिवास की शोभा बढ़ जाए.

'मैं ने महारानी की अनुमति ले कर साहूकार के पास संदेशा भेजा, किंतु मेरे द्रोहियों ने उसे कुछ ऐसी पट्टी पढ़ा दी कि उस ने मेरा संदेशा स्वीकार न किया. कहता है, कन्या का विवाह हो चुका है. मैं ने कहला भेजा, इस में कोई हानि नहीं, मैं तावान देने को तैयार हूं, लेकिन वह दुष्ट बराबर इनकार किए जाता है. आप जानते हैं; प्रेम असाध्य रोग है. आप को भी शायद इस का कुछ न कुछ अनुभव हो. बस; यह समझ लीजिए कि जीवन निरानंद हो रहा है. नींद और आराम हराम है. भोजन से अरुचि हो गई है. अगर कुछ दिन यही हाल रहा, तो समझ लीजिए कि मेरी जान पर बन आएगी.

'सोते जागते वही मूर्ति आंखों के सामने नाचती रहती है. मन को समझा कर हार गया और अब विवश हो कर मैं ने कूटनीति से काम लेने का निश्चय किया है. प्रेम और समर में सब कुछ क्षम्य है.

'मैं चाहता हूं, आप थोड़े से मातबर आदमियों को ले कर जाएं और उस रमणी को किसी तरह ले आएं. खुशी से आए खुशी से, बल से आए बल से, इस की चिंता नहीं. मैं अपने राज्य का मालिक हूं. इस में जिस वस्तु पर मेरी इच्छा हो, उस पर किसी दूसरे व्यक्ति का नैतिक या सामाजिक स्वत्व नहीं हो सकता. यह समझ लीजिए कि आप ही मेरे प्राणों की रक्षा कर सकते हैं. कोई दूसरा ऐसा आदमी नहीं है, जो इस काम को इतने सुचारु रूप से पूरा कर दिखाए. आप ने राज्य की बड़ीबड़ी सेवाएं की हैं. यह उस यज्ञ की पूर्णाहुति होगी और आप जन्मजन्मांतर तक राजवंश के इष्टदेव समझे जाएंगे.'

मि. मेहता का मरा हुआ आत्म गौरव एकाएक सचेत हो गया. जो रक्त चिरकाल से प्रवाह शून्य हो गया था, उस में सहसा उद्रेक हो उठा. त्योरियां चढ़ा कर बोले—तो आप चाहते हैं, मैं उसे किडनैप करूं?

राजा साहब ने उन के तेवर देख कर आग पर पानी डालते हुए कहा—कदापि नहीं मि. मेहता, आप मेरे साथ घोर अन्याय कर रहे हैं! मैं आप को अपना प्रतिनिधि बना कर भेज रहा हूं. कार्यसिद्धि के लिए आप जिस नीति से चाहें, काम ले सकते हैं. आप को पूरा अधिकार है.

मि. मेहता ने और भी उत्तेजित हो कर कहा—मुझ से ऐसा पाजीपन नहीं हो सकता.

राजा साहब की आंखों से चिनगारियां निकलने लगीं.

'अपने स्वामी की आज्ञा पालन करना पाजीपन है?'

'जो आज्ञा नीति और धर्म के विरुद्ध हो उस का पालन करना बेशक पाजीपन है.'

'किसी स्त्री से विवाह का प्रस्ताव करना नीति और धर्म के विरुद्ध है?'

'इसे आप विवाह कह कर 'विवाह' शब्द को कलंकित करते हैं. यह बलात्कार है!'

'आप अपने होश में हैं?'

'खूब अच्छी तरह?'

'मैं आप को धूल में मिला सकता हूं?'

'तो आप की गद्दी भी सलामत न रहेगी!'

'मेरी नेकियों का यही बदला है, नमकहराम?'

'आप अब शिष्टता की सीमा से आगे बढ़े जा रहे हैं; राजा साहब! मैं ने अब तक अपनी आत्मा ही हत्या की है और आप के हर एक जा और बेजा हुक्म की तामील की है; लेकिन आत्मसेवा की भी एक हद होती है, जिस के आगे कोई भला आदमी नहीं जा सकता. आप का यह कृत्य जघन्य है और इस में जो व्यक्ति आप का सहायक हो, वह इसी योग्य है कि उस की गरदन काट ली जाए. मैं ऐसी नौकरी पर लानत भेजता हूं.'

यह कह कर वह घर आए और रातोंरात बोरियाबकचा समेट कर रियासत से निकल गए; मगर इस के पहले सारा वृत्तांत लिख कर उन्होंने एजेंट के पास भेज दिया.

आंसुओं की होली

नामों को बिगाड़ने की प्रथा न जाने कब चली और कहां शुरू हुई. इस संसार व्यापी रोग का पता लगाएं तो ऐतिहासिक संसार में अवश्य ही अपना नाम छोड़ जाएं. पंडित जी का नाम तो श्री विलास था; पर मित्र लोग सिलबिल कहा करते थे. नामों का असर चरित्र पर कुछ न कुछ पड़ता जाता है.

बेचारे सिलबिल सचमुच ही सिलबिल थे. दफ्तर जा रहे हैं; मगर पाजामे का इजारबंद नीचे लटक रहा है. सिर पर फैल्टकैप है; पर लंबी सी चुटिया पीछे झांक रही है, अचकन यों बहुत सुंदर है.

न जाने उन्हें त्योहारों से क्या चिढ़ थी. दीवाली गुजर जाती पर वह भलामानस कौड़ी हाथ में न लेता. और होली का दिन तो उन की भीषण परीक्षा का दिन था. तीन दिन वह घर से बाहर न निकलते. घर पर भी काले कपड़े पहने बैठे रहते थे.

यार लोग टोह में रहते थे कि कहीं बचा फंस जाएं, मगर घर में घुस कर तो फौजदारी नहीं की जाती. एकआध बार फंसे भी, मगर घिघिया पुदिया कर बेदाग निकल गए.

लेकिन अब की समस्या बहुत कठिन हो गई थी. शास्त्रों के अनुसार 25 वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करने के बाद उन्होंने विवाह किया था. ब्रह्मचर्य के परिपक्व होने में जो थोड़ी बहुत कसर रही, वह तीन वर्ष के गौने की मुद्दत ने पूरी कर दी. यद्यपि स्त्री से उन्हें कोई शंका न थी, तथापि वह औरतों को सिर चढ़ाने के हामी न थे.

इस मामले में उन्हें अपना वही पुरानाधुराना ढंग पसंद था. बीबी को जब कस कर डांट दिया, तो उस की मजाल है कि रंग हाथ से छुए. विपत्ति यह थी कि ससुराल के लोग भी होली मनाने आने वाले थे. पुरानी मसल है 'बहन अंदर तो भाई सिकंदर'. इन सिकंदरों के आक्रमण से बचने का उन्हें कोई उपाय न सूझता था. मित्र लोग घर में न जा सकते थे; लेकिन सिकंदरों को कौन रोक सकता है.

स्त्री ने आंख फाड़ कर कहा—अरे भैया! क्या सचमुच घर में रंग न लाओगे? यह कैसे होली है, बाबा?

सिलबिल ने त्योरियां चढ़ा कर कहा—बस, मैं ने एक बार कह दिया और बात दोहराना मुझे पसंद नहीं. घर में रंग नहीं आएगा और न कोई छुएगा? मुझे कपड़ों पर लाल छींटें देख कर मचली आने लगती है. हमारे घर में ऐसी ही होली होती है.

स्त्री ने सिर झुका कर कहा—तो न लाना रंगसंग, मुझे रंग ले कर क्या करना है. जब तुम्हीं रंग न छुओगे, तो मैं कैसे छू सकती हूं. सिलबिल ने प्रसन्न हो कर कहा—निस्संदेह

यही साध्वी स्त्री का धर्म है.

'लेकिन भैया तो आने वाले हैं. वह क्यों मानेंगे?'

'उन के लिए भी मैं ने एक उपाय सोच लिया है. उसे सफल बनाना तुम्हारा काम है. मैं बीमार बन जाऊंगा. एक चादर ओढ़ कर लेट रहूंगा. तुम कहना इन्हें ज्वर आ गया. बस; चलो छुट्टी हुई.'

स्त्री ने आंख नचा कर कहा—ऐ नौज; कैसी बातें मुंह से निकालते हो! ज्वर जाए मुद्दई के घर, यहां आए तो मुंह झुलस दूं निगोड़े का.

'तो फिर दूसरा उपाय ही क्या है?'

तुम ऊपर वाली छोटी कोठरी में छिप रहना, मैं कह दूंगी, उन्होंने जुलाब लिया है. बाहर निकलेंगे तो हवा लग जाएगी.'

पंडित जी खिल उठे—बस, बस, यही सब से अच्छा.

2

होली का दिन है. बाहर हाहाकार मचा हुआ है. पुराने जमाने में अबीर और गुलाल के सिवा और कोई रंग न खेला जाता था. अब नीले, हरे, काले सभी रंगों का मेल हो गया है और इस संगठन से बचना आदमी के लिए तो संभव नहीं. हां, देवता बचें.

सिलबिल के दोनों साले मुहल्ले भर के मर्दों, औरतों, बच्चों और बूढ़ों का निशाना बने हुए थे. बाहर के दीवानखाने के फर्श, दीवारें—यहां तक कि तसवीरें भी रंग उठी थीं. घर में भी यही हाल था. मुहल्ले की ननदें भला कब मानने वाली थीं. परनाला तक रंगीन हो गया था.

बड़े साले ने पूछा—क्यों री चंपा, क्या सचमुच उन की तबीयत अच्छी नहीं? खाना खाने भी न आए?

चंपा ने सिर झुका कर कहा—हां भैया, रात ही से पेट में कुछ दर्द होने लगा. डाक्टर ने हवा में निकलने को मना कर दिया है.

जरा देर बाद छोटे साले ने कहा—क्यों जीजी, क्या भाई साहब नीचे नहीं आएंगे? ऐसी भी क्या बीमारी है! कहो तो ऊपर जा कर देख आऊं.

चंपा ने उस का हाथ पकड़ कर कहा—नहींनहीं, ऊपर मत जाओ! वह रंगवंग न खेलेंगे. डाक्टर ने हवा में निकलने को मना कर दिया है.

दोनों भाई हाथ मल कर रह गए.

सहसा छोटे भाई को एक बात सूझी—जीजा जी के कपड़ों के साथ क्यों न होली खेलें. वे तो बीमार नहीं हैं.

बड़े भाई के मन में यह बात बैठ गई. बहन बेचारी अब क्या करती? सिकंदरों ने कुंजियां उस के हाथ से लीं और सिलबिल के सारे कपड़े निकालनिकाल कर रंग डाले. रूमाल तक न छोड़ा.

जब चंपा ने उन कपड़ों को आंगन में अलगनी पर सूखने को डाल दिया तो ऐसा जान पड़ा, मानो किसी रंगरेज ने ब्याह के जोड़े रंगे हों. सिलबिल ऊपर बैठेबैठे यह तमाशा देख रहे थे; पर जबान न खोलते थे. छाती पर सांप सा लोट रहा था. सारे कपड़े खराब हो गए,

दफ्तर जाने को भी कुछ न बचा. इन दुष्टों को मेरे कपड़ों से न जाने क्या बैर था.

घर में नाना प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन बन रहे थे. मुहल्ले की एक ब्राह्मणी के साथ चंपा भी जुटी थी. दोनों भाई और कई अन्य सज्जन आंगन में भोजन करने बैठे, तो बड़े साले ने चंपा से पूछा—कुछ उन के लिए भी खिचड़ीविचड़ी बनाई है? पूरियां तो बेचारे आज खा न सकेंगे!

चंपा ने कहा—अभी तो नहीं बनाई, अब बना लूंगी.

'वाह री तेरी अक्ल! अभी तक तुझे इतनी फिक्र नहीं कि वह बेचारे खाएंगे क्या. तू तो इतनी लापरवाह कभी न थी. जा निकाल ला जल्दी से चावल और मूंग की दाल.'

लीजिए खिचड़ी पकने लगी. इधर मित्रों ने भोजन करना शुरू किया. सिलबिल ऊपर बैठे अपनी किस्मत को रो रहे थे. उन्हें इस सारी विपत्ति का एक ही कारण मालूम होता था —विवाह! चंपा न आती, तो ये साले क्यों आते, कपड़े क्यों खराब होते, होली के दिन मूंग की खिचड़ी क्यों खाने को मिलती? मगर अब पछताने से क्या होता है. जितनी देर में लोगों ने भोजन किया, उतनी देर में खिचड़ी तैयार हो गई. बड़े साले ने खुद चंपा को ऊपर भेजा कि खिचड़ी की थाली ऊपर दे आए.

सिलबिल ने थाली की ओर कुपित नेत्रों ने देख कर कहा—इसे मेरे सामने से हटा ले जा.

'क्या आज उपवास करोगे?'

'तुम्हारी यही इच्छा है, तो यही सही.'

'मैं ने क्या किया. सबेरे से जुती हुई हूं. भैया ने खुद खिचड़ी डलवाई और मुझे यहां भेजा.'

'हां, वह तो मैं देख रहा हूं कि मैं घर का स्वामी नहीं. सिकंदरों ने उस पर कब्जा जमा लिया है, मगर मैं यह नहीं मान सकता कि तुम चाहतीं तो और लोगों के पहले ही मेरे पास थाली न पहुंच जाती. मैं इसे पतिव्रत धर्म के विरुद्ध समझता हूं, और क्या कहूं!'

'तुम तो देख रहे थे कि दोनों जने मेरे सिर पर सवार थे.'

'अच्छी दिल्लगी है कि और लोग तो समोसे और खस्ते उड़ाएं और मुझे मूंग की खिचड़ी दी जाए. वाह रे नसीब!'

'तुम इस में से दोचार कौर खा लो, मुझे ज्यों ही अवसर मिलेगा, दूसरी थाली लाऊंगी.'

'सारे कपड़े रंगवा डाले, दफ्तर कैसे जाऊंगा? यह दिल्लगी मुझे जरा भी नहीं भाती. मैं इसे बदमाशी कहता हूं. तुम ने संदूक की कुंजी क्यों दे दी? क्या मैं इतना पूछ सकता हूं?'

'जबरदस्ती छीन ली. तुम ने सुना नहीं? करती क्या?'

'अच्छा, जो हुआ सो हुआ, यह थाली ले जा. धर्म समझना तो दूसरी थाली लाना, नहीं तो आज व्रत ही सही.'

एकाएक पैरों की आहट पा कर सिलबिल ने सामने देखा, तो दोनों साले आ रहे हैं. उन्हें देखते ही बिचारे ने मुंह बना लिया, चादर से शरीर ढंक लिया और कराहने लगे.

बड़े साले ने कहा—कहिए, कैसी तबीयत है? थोड़ी सी खिचड़ी खा लीजिए.

सिलबिल ने मुंह बना कर कहा—अभी तो कुछ खाने की इच्छा नहीं है.

‘नहीं, उपवास करना तो हानिकर होगा. खिचड़ी खा लीजिए.’

बेचारे सिलबिल ने मन में इन दोनों शैतानों को खूब कोसा और विष की भांति खिचड़ी कंठ के नीचे उतारी. आज होली के दिन खिचड़ी ही भाग्य में लिखी थी! जब तक सारी खिचड़ी समाप्त न हो गई, दोनों वहां डटे रहे, मानो जेल के अधिकारी किसी अनशन व्रतधारी को भोजन करा रहे हों. बेचारे को ठूंसठूंस कर खिचड़ी खानी पड़ी. पकवानों के लिए गुंजाइश ही न रही.

3

दस बजे रात को चंपा उत्तम पदार्थों का थाल लिए पतिदेव के पास पहुंची! महाशय मन ही मन झुंझला रहे थे. भाइयों के सामने मेरी परवाह कौन करता है. न जाने कहां से दोनों शैतान फट पड़े.

दिन भर उपवास कराया और अभी तक भोजन का कहीं पता नहीं. बारे चंपा को थाल लाते देख कर कुछ अग्नि शांत हुई. बोले—अभी तो बहुत सवेरा है, एकदो घंटे बाद क्यों न आईं?

चंपा ने सामने थाली रख कर कहा—तुम तो न हारी ही मानते हो, न जीती. अब आखिर ये दो मेहमान आए हुए हैं, इन का सेवासत्कार न करूं तो भी तो काम नहीं चलता. तुम्हीं को बुरा लगेगा. कौन रोज आएंगे.

‘ईश्वर न करे कि रोज आएं, यहां तो एक ही दिन में बधिया बैठ गई.’

थाल की सुगंधमय, तरबतर चीजें देख कर सहसा पंडित जी के मुखारविंद पर मुसकान की लाली दौड़ गई. एकएक चीज खाते थे और चंपा को सराहते थे—सच कहता हूं, चंपा; मैं ने ऐसी चीजें कभी नहीं खाई थीं. हलवाई साला क्या बनाएगा. जी चाहता है, कुछ इनाम दूं.

‘तुम मुझे बना रहे हो. क्या करूं जैसा बनाना आता है, बना लाई.’

‘नहीं जी, सच कह रहा हूं. मेरी तो आत्मा तक तृप्त हो गई. आज मुझे ज्ञात हुआ कि भोजन का संबंध उदर से इतना नहीं, जितना आत्मा से है. बतलाओ क्या इनाम दूं?’

‘जो मांगू, वह दोगे?’

‘दूंगा—जनेऊ की कसम खा कर कहता हूं!’

‘न दो तो मेरी बात जाए!’

‘कहता हूं भाई, अब कैसे कहूं. क्या लिखापढ़ी कर दूं?’

‘अच्छा, तो मांगती हूं. मुझे अपने साथ होली खेलने दो.’

पंडित जी का रंग उड़ गया. आंखें फाड़ कर बोले—होली खेलने दूं? मैं तो होली खेलता नहीं. कभी नहीं खेला. होली खेलना होता, तो घर में छिप कर क्यों बैठता.

‘और के साथ मत खेलो; लेकिन मेरे साथ तो खेलना ही पड़ेगा!’

‘यह मेरे नियम के विरुद्ध है. जिस चीज को अपने घर में उचित समझूं उसे किस न्याय से घर के बाहर अनुचित समझूं, सोचो.’

चंपा ने सिर नीचा कर के कहा—घर में ऐसी कितनी बातें उचित समझते हो, जो घर के बाहर करना अनुचित ही नहीं पाप भी है.

पंडित जी झेंपते हुए बोले—अच्छा भाई, तुम जीती, मैं हारा. अब मैं तुम से यही दान मांगता हूं…

'पहले मेरा पुरस्कार दे दो, पीछे मुझ से दान मांगना'—यह कहते हुए चंपा ने लोटे का रंग उठा लिया और पंडित जी को सिर से पांव तक नहला दिया. जब तक वह उठ कर भागें उस ने मुट्ठी भर गुलाल ले कर सारे मुंह में पोत दिया.

पंडित जी रोनी सूरत बना कर बोले—अभी और कसर बाकी हो, तो वह भी पूरी कर लो. मैं जानता था कि तुम मेरी आस्तीन का सांप बनोगी. अब और कुछ रंग बाकी नहीं रहा?

चंपा ने पति के मुख की ओर देखा, तो उस पर मनोवेदना का गहरा रंग झलक रहा था. पछता कर बोली—क्या तुम सचमुच बुरा मान गए हो? मैं तो समझती थी कि तुम केवल मुझे चिढ़ा रहे हो.

श्रीविलास ने कांपते हुए स्वर में कहा—नहीं चंपा, मुझे बुरा नहीं लगा. हां, तुम ने मुझे उस कर्त्तव्य की याद दिला दी, जो मैं अपनी कायरता के कारण भुला बैठा था. वह सामने जो चित्र देख रही हो, मेरे परम मित्र मनहरनाथ का है, जो अब संसार में नहीं है. तुम से क्या कहूं, कितना सरस, कितना भावुक, कितना साहसी आदमी था! देश की दशा देखदेख कर उस का खून जलता रहता था. 19-20 भी कोई उम्र होती है, पर वह उसी उम्र में अपने जीवन का मार्ग निश्चित कर चुका था.

—सेवा करने का अवसर पा कर वह इस तरह उसे पकड़ता था, मानो संपत्ति हो. जन्म का विरागी था. वासना तो उसे छू भी न गई थी. हमारे और साथी सैरसपाटे करते थे; पर उस का मार्ग सब से अलग था. सत्य के लिए प्राण देने को तैयार, कहीं अन्याय देखा और भवें तन गईं, कहीं पत्रों में अत्याचार की खबर देखी और चेहरा तमतमा उठा. ऐसा तो मैं ने आदमी ही नहीं देखा.

—ईश्वर ने अकाल ही बुला लिया, नहीं तो वह मनुष्यों में रत्न होता. किसी मुसीबत के मारे का उद्धार करने को अपने प्राण हथेली पर लिए फिरता था. स्त्रीजाति का इतना आदर और सम्मान कोई क्या करेगा? स्त्री उस के लिए पूजा और भक्ति की वस्तु थी.

—पांच वर्ष हुए, यही होली का दिन था. मैं भंग के नशे में चूर, रंग में सिर से पांव तक नहाया हुआ, उसे गाना सुनने के लिए बुलाने गया, तो देखा कि वह कपड़े पहने कहीं जाने को तैयार है. पूछा—कहां जा रहे हो? उस ने मेरा हाथ पकड़ कर कहा—तुम अच्छे वक्त पर आ गए, नहीं तो मुझे जाना पड़ता. एक अनाथ बुढ़िया मर गई है, कोई उसे कंधा देने वाला नहीं मिलता. कोई किसी मित्र से मिलने गया हुआ है, कोई नशे में चूर पड़ा हुआ है, कोई मित्रों की दावत कर रहा है, कोई महफिल सजाए बैठा है. कोई लाश को उठाने वाला नहीं. ब्राह्मण क्षत्री उस चमारिन की लाश कैसे छुएंगे, उन का तो धर्म भ्रष्ट होता है, कोई तैयार नहीं होता? मुश्किल से दो कहार मिले हैं. एक मैं हूं, चौथे आदमी की कमी थी, सो ईश्वर ने तुम्हें भेज दिया. चलो, चलें.

—हाय! अगर मैं जानता कि यह प्यारे मनहर का आदेश है, तो आज मेरी आत्मा को इतनी ग्लानि न होती. मेरे घर कई मित्र आए हुए थे. गाना हो रहा था. उस वक्त लाश उठा कर नदी जाना मुझे अप्रिय लगा. बोला—इस वक्त तो भाई, मैं नहीं जा सकूंगा. घर पर

मेहमान बैठे हुए हैं. मैं तुम्हें बुलाने आया था.

—मनहर ने मेरी ओर तिरस्कार पूर्ण नेत्रों से देख कर कहा—अच्छी बात है, तुम जाओ; मैं और कोई साथी खोज लूंगा. मगर तुझ से मुझे ऐसी आशा नहीं थी. तुम ने भी वही कहा, जो तुम से पहले औरों ने कहा था. कोई नई बात नहीं थी. अगर हम लोग अपने कर्त्तव्य को भूल न गए होते, तो आज यह दशा ही क्यों होती? ऐसी होली को धिक्कार है! त्योहार, तमाशा देखने, अच्छीअच्छी चीजें खाने और अच्छेअच्छे कपड़े पहनने का नाम नहीं है. यह व्रत है, तप है, अपने भाइयों से प्रेम और सहानुभूति करना ही त्योहार का खास मतलब है और कपड़े लाल करने से पहले खून को लाल कर लो. सफेद खून पर यह लाली शोभा नहीं देती.

—यह कह कर वह चला गया. मुझे उस वक्त यह फटकारें बहुत बुरी मालूम हुईं. अगर मुझ में वह सेवाभाव न था, तो उसे मुझे यों धिक्कारने का कोई अधिकार न था. घर चला आया; पर वे बातें बराबर मेरे कानों में गूंजती रहीं. होली का सारा मजा बिगड़ गया.

—एक महीने तक हम दोनों में मुलाकात न हुई. कालेज इम्तहान की तैयारी के लिए बंद हो गया था. इसलिए कालेज में भी भेंट न होती थी. मुझे कुछ खबर नहीं, वह कब और कैसे बीमार पड़ा, कब अपने घर गया. सहसा एक दिन मुझे उस का पत्र मिला. हाय! उस पत्र को पढ़ कर आज भी छाती फटने लगती है.

श्रीविलास एक क्षण तक गला रुक जाने के कारण बोल न सके. फिर बोले—किसी दिन तुम्हें फिर दिखाऊंगा. लिखा था, मुझ से आखिरी बार मिल जा, अब शायद इस जीवन में भेंट न हो. खत मेरे हाथ से छूट कर गिर पड़ा. उस का घर मेरठ जिले में था. दूसरी गाड़ी जाने में आधा घंटे की कसर थी. तुरंत चल पड़ा. मगर उस के दर्शन न बदे थे. मेरे पहुंचने से पहले ही वह सिधार चुका था. चंपा, उस के बाद मैं ने होली नहीं खेली, होली ही नहीं, और सभी त्योहार छोड़ दिए.

—ईश्वर ने शायद मुझे क्रिया की शक्ति नहीं दी. अब बहुत चाहता हूं कि कोई मुझ से सेवा का काम ले. खुद आगे नहीं बढ़ सकता; लेकिन पीछे चलने को तैयार हूं. पर मुझ से कोई काम लेने वाला भी नहीं; लेकिन आज वह रंग डाल कर तुम ने मुझे उस धिक्कार की याद दिला दी. ईश्वर मुझे ऐसी शक्ति दे कि मैं मन में ही नहीं, कर्म में भी मनहर बनूं.

यह कहते हुए श्रीविलास ने तश्तरी से गुलाल निकाला और उसे चित्र पर छिड़क कर प्रणाम किया.

मुबारक बीमारी

रात के नौ बज गए थे. एक युवती अंगीठी के सामने बैठी हुई आग फूंकती और उस के गाल आग के कुंदनी रंग में दहक रहे थे. उस की बड़ीबड़ी नरगिसी आंखें दरवाजे की तरफ लगी हुई थीं. कभी चौंक कर आंगन की तरफ ताकती, कभी कमरे की तरफ. फिर आने वालों की इस देरी से उस की त्योरियों पर बल पड़ जाते और आंखों में हलका सा गुस्सा नजर आता. कमल पानी में झकोले खाने लगता.

इसी बीच आने वालों की आहट मिली. कहार बाहर पड़ा खर्राटे ले रहा था. बूढ़े लाला हरनामदास ने आते ही उसे एक ठोकर लगा कर कहा—कमबख्त, अभी शाम हुई है और अभी से लंबी तान दी!

नौजवान लाला हरिदास घर में दाखिल हुए—चेहरा बुझा हुआ, चिंतित.

देवकी ने आ कर उन का हाथ पकड़ लिया और गुस्से व प्यार की मिली हुई आवाज में बोली—आज इतनी देर क्यों हुई?

दोनों नए खिले हुए फूल थे—एक पर ओस की ताजगी थी, दूसरा धूप से मुरझाया हुआ.

हरिदास—हां, आज देर हो गई, तुम यहां क्यों बैठी रहीं?

देवकी—क्या करती, आग बुझी जाती थी, खाना न ठंडा हो जाता.

हरिदास—तुम जरा से काम के लिए इतनी देर आग के सामने न बैठा करो. बाज आया गरम खाने से.

देवकी—अच्छा कपड़े तो उतारो, आज इतनी देर क्यों की?

हरिदास—क्या बताऊं, पिताजी ने ऐसा नाक में दम कर दिया है कि कुछ कहते नहीं बनता. इस रोजरोज के झंझट से तो यही अच्छा है कि मैं कहीं और नौकरी कर लूं.

लाला हरनामदास एक आटे की चक्की के मालिक थे. उन की जवानी के दिनों में आसपास दूसरी चक्की न थी. उन्होंने खूब धन कमाया. मगर अब वह हालत न थी. चक्कियां कीड़ेमकोड़ों की तरह पैदा हो गई थीं, नई मशीनों और ईजादों के साथ. उन में काम करने वाले भी जोशीले नौजवान थे, मुस्तैदी से काम करते थे. इसलिए हरनामदास का कारखाना रोज गिरता जाता था.

बूढ़े आदमियों को नई चीजों से जो चिढ़ हो जाती है वह लाला हरनामदास को भी थी. वह अपनी पुरानी मशीन ही को चलाते थे, किसी किस्म की तरक्की या सुधार को पाप समझते थे, मगर अपनी इस मंदी पर कुढ़ा करते थे.

हरिदास ने उन की मर्जी के खिलाफ कालेजियेट शिक्षा प्राप्त की थी और उस का इरादा था कि अपने पिता के कारखाने को नए उसूलों पर चला कर आगे बढ़ाए. लेकिन जब वह उन से किसी परिवर्तन या सुधार का जिक्र करता तो लाला साहब जामे से बाहर हो जाते और बड़े गर्व से कहते—कालेज में पढ़ने से तजुर्बा नहीं आता. तुम अभी बच्चे हो, इस काम में मेरे बाल सफेद हो गए हैं, तुम मुझे सलाह मत दो. जिस तरह मैं कहता हूं, काम किए जाओ.

कई बार ऐसे मौके आ चुके थे कि बहुत ही छोटे मामलों में अपने पिता की मर्जी के खिलाफ काम करने के जुर्म में हरिदास को सख्त फटकारें सहनी पड़ी थीं. इसी वजह से अब वह इस काम से कुछ उदासीन हो गया था और किसी दूसरे कारखाने में किस्मत आजमाना चाहता था जहां उसे अपने विचारों को अमली सूरत देने की ज्यादा सहूलियतें हासिल हों.

देवकी ने सहानुभूतिपूर्वक कहा—तुम इस फिक्र में क्यों जान खपाते हो, जैसे वह कहें, वैसे ही करो, भला दूसरी जगह नौकरी कर लोगे तो वह क्या कहेंगे? और चाहे वह गुस्से के मारे कुछ न बोलें, लेकिन दुनिया तो तुम्हीं को बुरा कहेगी.

देवकी नई शिक्षा के आभूषण से वंचित थी. उस ने स्वार्थ का पाठ न पढ़ा था, मगर उस का पति अपने 'अलमामेटर' का एक प्रतिष्ठित सदस्य था. उसे अपनी योग्यता पर पूरा भरोसा था, उस पर नाम कमाने का जोश. इसलिए वह अपने बूढ़े पिता के पुराने ढर्रों को देख कर धीरज खो बैठता था. अगर अपनी योग्यताओं के लाभप्रद उपयोग की कोशिश के लिए दुनिया उसे बुरा कहे, तो उस को परवाह न थी.

झुंझला कर बोला—कुछ मैं अमरित की घरिया पी कर तो आया नहीं हूं कि सारी उम्र उन के मरने का इंतजार किया करूं. मूर्खों की अनुचित टीकाटिप्पणियों के डर से क्या अपनी उम्र बरबाद कर दूं. मैं अपने कुछ हमउम्रों को जानता हूं जो हरगिज मेरी सी योग्यता नहीं रखते. लेकिन मोटर पर हवा खाने निकलते हैं, बंगलों में रहते हैं और शान से जिंदगी बसर करते हैं तो मैं क्यों हाथ पर हाथ रखे जिंदगी को अमर समझे बैठा रहूं. संतोष और निस्पृहता का युग बीत गया. यह संघर्ष का युग है. यह मैं जानता हूं कि पिता का आदर करना मेरा धर्म है. मगर सिद्धांतों के मामले में मैं उन से क्या किसी से भी नहीं दब सकता.

इसी बीच कहार ने आ कर कहा—लाला जी थाली मांगते हैं.

लाला हरनामदास हिंदू रस्मरिवाज के बड़े पाबंद थे. मगर बुढ़ापे के कारण चौके के चक्कर से मुक्ति पा चुके थे. पहले कुछ दिनों तक जाड़ों में रात को पूरियां खाते रहे, अब कमजोरी के कारण पूरियां न हजम होती थीं इसलिए चपातियां ही अपनी बैठक में मंगा लिया करते थे. मजबूरी ने वह कराया था जो हुज्जत और दलील के काबू से बाहर था.

हरिदास के लिए भी देवकी ने खाना निकाला. पहले तो वह हजरत बहुत दुखी नजर आते थे, लेकिन बघार की खुशबू ने खाने के लिए चाव पैदा कर दिया था. अकसर हम अपनी आंख और नाक से हाजमे का काम लिया करते हैं.

2

लाला हरनामदास रात को भलेचंगे सोए लेकिन अपने बेटे की गुस्ताखियां और कुछ अपने कारोबार की सुस्ती और मंदी उन की आत्मा के लिए भयानक कष्ट का कारण हो गईं

और चाहे इसी उद्विग्नता का असर हो, चाहे बुढ़ापे का, सुबह होने से पहले उन पर लकवे का हमला हो गया. जबान बंद हो गई और चेहरा ऐंठ गया.

हरिदास डाक्टर के पास दौड़ा. डाक्टर आए, मरीज को देखा और बोले—डरने की कोई बात नहीं. सेहत होगी मगर तीन महीने से कम न लगेंगे. चिंताओं के कारण यह हमला हुआ है इसलिए कोशिश करनी चाहिए कि वह आराम से सोएं, परेशान न हों और जबान खुल जाने पर भी जहां तक मुमकिन हो, बोलने से बचें.

बेचारी देवकी बैठी रो रही थी. हरिदास ने आ कर उस को सांत्वना दी, और फिर डाक्टर के यहां से दवा ला कर दी. थोड़ी देर में मरीज को होश आया, इधरउधर कुछ खोजती हुई सी निगाहों से देखा कि जैसे कुछ कहना चाहते हैं और फिर इशारे से लिखने के लिए कागज मांगा.

हरिदास ने कागज और पेंसिल रख दी, तो बूढ़े लाला साहब ने हाथों को खूब संभाल कर लिखा—इंतजाम दीनानाथ के हाथ में रहे.

ये शब्द हरिदास के हृदय में तीर की तरह लगे. अफसोस! अब भी मुझ पर भरोसा नहीं. यानी कि दीनानाथ मेरा मालिक होगा और मैं उस का गुलाम बन कर रहूंगा! यह नहीं होने का. कागज लिए हुए देवकी के पास आए और बोले—लाला जी ने दीनानाथ को मैनेजर बनाया है, उन्हें मुझ पर इतना एतबार भी नहीं है, लेकिन मैं इस मौके को हाथ से न जाने दूंगा. उन की बीमारी का अफसोस तो जरूर है मगर शायद परमात्मा ने मुझे अपनी योग्यता दिखलाने का यह अवसर दिया है. और इस से मैं जरूर फायदा उठाऊंगा.

कारखाने के कर्मचारियों ने इस दुर्घटना की खबर सुनी तो बहुत घबराए. उन में कई निकम्मे, बेमसरफ आदमी भरे हुए थे, जो सिर्फ खुशामद और चिकनीचुपड़ी बातों की रोटी खाते थे.

मिस्त्री ने कई दूसरे कारखानों में मरम्मत का काम उठा लिया था और रोज किसी न किसी बहाने से खिसक जाता था. फायरमैन और मशीनमैन दिन को तो झूठमूठ चक्की की सफाई में काटते थे और रात को काम कर के ओवर टाइम की मजदूरी ले लिया करते थे.

दीनानाथ जरूर होशियार और तजर्बेकार आदमी था, मगर उसे भी काम करने के मुकाबिले में 'जी हां' रटते रहने में ज्यादा मजा आता था. लाला हरनामदास मजदूरी देने में बहुत हीलेहवाले किया करते थे और अकसर काटकपट के भी आदी थे. इसी को वह कारोबार का अच्छा असूल समझते थे.

हरिदास ने कारखाने में पहुंचते ही साफ शब्दों में कह दिया कि तुम लोगों को मेरे वक्त में जी लगा कर काम करना होगा. मैं इसी महीने में काम देख कर सब की तरक्की करूंगा. मगर अब टालमटोल का गुजर नहीं, जिन्हें मंजूर न हो वे अपना बोरियाबिस्तर संभालें और फिर दीनानाथ को बुला कर कहा—भाई साहब, मुझे खूब मालूम है कि आप होशियार और सूझबूझ रखने वाले आदमी हैं. आप ने अब तक यहां का जो रंग देखा, वही अख्तियार किया है. लेकिन अब मुझे आप के तजुर्बे और मेहनत की जरूरत है. पुराने हिसाबों की जांचपड़ताल कीजिए. बाहर से काम लाना मेरा जिम्मा है लेकिन यहां का इंतजाम आप के सुपुर्द है. जो कुछ नफा होगा, उस में आप का भी हिस्सा होगा. मैं चाहता हूं कि दादा की अनुपस्थिति में कुछ अच्छा काम कर के दिखाऊं.

इस मुस्तैदी और चुस्ती का असर बहुत जल्द कारखाने में नजर आने लगा. हरिदास ने खूब इश्तहार बंटवाए. उस का असर यह हुआ कि काम आने लगा. दीनानाथ की मुस्तैदी की बदौलत ग्राहकों को नियत समय पर और किफायत से आटा मिलने लगा. पहला महीना भी खत्म न हुआ था कि हरिदास ने नई मशीन मंगवाई. थोड़े अनुभवी आदमी रख लिए, फिर क्या था सारे शहर में इस कारखाने की धूम मच गई.

हरिदास ग्राहकों से इतनी अच्छी तरह पेश आता कि जो एक बार उस से मुआमला करता वह हमेशा के लिए उस का खरीदार बन जाता. कर्मचारियों के साथ उस का सिद्धांत था—काम सख्त और मजदूरी ठीक. उस के ऊंचे व्यक्तित्व का भी स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ा. करीबकरीब सभी कारखानों का रंग फीका पड़ गया. उस ने बहुत ही कम नफे पर कई ठेके ले लिए. मशीन को दम मारने की मोहलत न थी, रात और दिन काम होता था.

तीसरा महीना खत्म होतेहोते उस कारखाने की शक्ल ही बदल गई. हाते में घुसते ही ठेले और गाड़ियों की भीड़ नजर आती थी. कारखाने में बड़ी चहलपहल थी—हर आदमी अपनेअपने काम में लगा हुआ. इस के साथ ही प्रबंध कौशल का यह वरदान था कि भद्दी हड़बड़ी और जल्दबाजी का कहीं निशान न था.

3

लाला हरनामदास धीरेधीरे ठीक होने लगे. एक महीने के बाद वह रुकरुक कर कुछ बोलने लगे. डाक्टर की सख्त ताकीद थी कि उन्हें पूरी शांति की स्थिति में रखा जाए. मगर जब से उन की जबान खुली उन्हें एक दम को भी चैन न था. देवकी से कहा करते—सारा कारोबार मिट्टी में मिला जाता है. यह लड़का नहीं मालूम क्या कर रहा है, सारा काम अपने हाथ में ले रखा है. मैं ने ताकीद कर दी थी कि दीनानाथ को मैनेजर बनाना लेकिन उस ने जरा भी परवा न की. मेरी सारी उम्र की कमाई बरबाद हुई जाती है.

देवकी उन को सांत्वना देती कि आप इन बातों की आशंका न करें. कारोबार बहुत खूबी से चल रहा है और खूब नफा हो रहा है. पर वह भी इस मामले को तूल देते हुए डरती थी कि कहीं लकवे का फिर हमला न हो जाए. 'हूं. हां' कह कर टालना चाहती थी.

हरिदास ज्यों ही घर में आता, लाला जी उस पर सवालों की बौछार कर देते और जब वह टाल कर कोई दूसरा जिक्र छेड़ देता तो बिगड़ जाते और कहते—जालिम, तू जीतेजी मेरे गले पर छुरी फेर रहा है. मेरी पूंजी उड़ा रहा है. तुझे क्या मालूम कि मैं ने एकएक कौड़ी किस मशक्कत से जमा की है. तूने दिल में ठान ली है कि इस बुढ़ापे में मुझे गलीगली ठोकर खिलाए, मुझे कौड़ीकौड़ी का मुहताज बनाए.

हरिदास फटकार का कोई जवाब न देता क्योंकि बात से बात बढ़ती है. उस की चुप्पी से लाला साहब को यकीन हो जाता कि जरूर कारखाना तबाह हो गया.

एक रोज देवकी ने हरिदास से कहा—अभी कितने दिन और इन बातों को लालाजी से छिपाओगे?

हरिदास ने जवाब दिया—मैं चाहता हूं कि नई मशीन का रुपया अदा हो जाए तो उन्हें ले जा कर सब कुछ दिखा दूं. तब तक डाक्टर साहब की हिदायत के अनुसार तीन महीने भी पूरे हो जाएंगे.

देवकी—लेकिन ऐसे छिपाने से क्या फायदा, जब वे आठों पहर इसी की रट लगाए रहते हैं. इस से तो चिंता और बढ़ती ही है, कम नहीं होती. इस से यही अच्छा है कि उन से सब कुछ कह दिया जाए.

हरिदास—मेरे कहने का तो उन्हें यकीन आ चुका. हां, दीनानाथ कहें तो शायद यकीन हो.

देवकी—अच्छा तो कल दीनानाथ को यहां भेज दो. लाला जी उसे देखते ही खुद बुला लेंगे, तुम्हें इस रोजरोज की डांटफटकार से तो छुट्टी मिल जाएगी.

हरिदास—अब मुझे इन फटकारों का जरा भी दुख नहीं होता. मेरी मेहनत और योग्यता का नतीजा आंखों से सामने मौजूद है. जब मैं ने कारखाना अपने हाथ में लिया था, आमदनी और खर्च का मीजान मुश्किल से बैठता था. आज पांच सौ नफा है. तीसरा महीना खत्म होने वाला है और मैं मशीन को आधी कीमत अदा कर चुका. शायद अगले दो महीनों में पूरी कीमत अदा हो जाएगी. उस वक्त से कारखाने का खर्च तिगुने से ज्यादा है लेकिन आमदनी पंचगुनी हो गई है. हजरत देखेंगे तो आंखें खुल जाएंगी. कहां हाते में उल्लू बोलते थे. एक मेज पर बैठे आप ऊंघा करते थे, एक पर दीनानाथ कान कुरेदा करता था. मिस्त्री और फायरमैन ताश खेलते थे. बस, दिन में दोचार घंटे चक्की चल जाती थी. अब दम मारने की फुरसत नहीं है. सारी जिंदगी में जो कुछ न कर सके वह मैं ने तीन महीने में कर के दिखा दिया. इसी तजुर्बे और काररवाई पर आप को इतना घमंड था. जितना काम वह एक महीने में करते थे उतना मैं रोज कर डालता हूं.

देवकी ने भर्त्सनापूर्ण नेत्रों से देख कर कहा—अपने मुंह मियां मिट्ठू बनना कोई तुम से सीख ले! जिस तरह मां अपने बेटे को हमेशा दुबला ही समझती है, उसी तरह बाप भी बेटे को हमेशा नादान समझा करता है. यह उन की ममता है, बुरा मानने की बात नहीं हैं.

हरिदास ने लज्जित हो कर सिर झुका लिया.

4

दूसरे रोज दीनानाथ उन को देखने के बहाने से लाला हरनामदास की सेवा में उपस्थित हुआ. लाला जी उसे देखते ही तकिए के सहारे उठ बैठे और पागलों की तरह बेचैन हो कर पूछा—क्यों, कारोबार सब तबाह हो गया कि अभी कुछ कसर बाकी है! तुम लोगों ने तो मुझे मुर्दा समझ लिया है. कभी बात तक न पूछी. कम से कम तुम से मुझे ऐसी उम्मीद न थी. बहू ने मेरी तीमारदारी न की होती तो मर ही गया होता.

दीनानाथ—आप का कुशलमंगल रोज बाबू साहब से पूछ लिया करता था. आप ने मेरे साथ जो नेकियां की हैं, उन्हें मैं भूल नहीं सकता. मेरा एकएक रोआं आप का एहसानमंद है. मगर इस बीच काम ही कुछ ऐसा था कि हाजिर होने की मोहलत न मिली.

हरनामदास—खैर, कारखाने का क्या हाल है? दीवाला होने में क्या कसर बाकी है?

दीनानाथ ने ताज्जुब के साथ कहा—यह आप से किस ने कह दिया कि दीवाला होने वाला है? इस अरसे में कारोबार में जो तरक्की हुई है, वह आप खुद अपनी आंखों से देख लेंगे.

हरनामदास व्यंग्यपूर्वक बोले—शायद तुम्हारे बाबू साहब ने तुम्हारी मनचाही तरक्की

कर दी! अच्छा अब स्वामिभक्ति छोड़ो और साफ बतलाओ. मैं ने ताकीद कर दी थी कि कारखाने का इंतजाम तुम्हारे हाथ में रहेगा. मगर शायद हरिदास ने सब कुछ अपने हाथ में रखा.

दीनानाथ—जी हां, मगर मुझे इस का जरा भी दुख नहीं. वही इस काम के लिए ठीक भी थे. जो कुछ उन्होंने कर दिखाया, वह मुझ से हरगिज न हो सकता.

हरनामदास—मुझे यह सुनसुन कर हैरत होती है. बतलाओ, क्या तरक्की हुई?

दीनानाथ—तफसील तो बहुत ज्यादा होगी, मगर थोड़े में यह समझ लीजिए कि पहले हम लोग जितना काम एक महीने में करने थे उतना अब रोज होता है. नई मशीन आई थी, उस की आधी कीमत अदा हो चुकी है. वह अकसर रात को भी चलती है. ठाकुर कंपनी का पांच हजार मन आटे का ठेका लिया था, वह पूरा होने वाला है. जगतराम बनवारीलाल से कमसरियट का ठेका लिया है. उन्होंने हम को पांच सौ बोरे माहवार का बयाना दिया है. इसी तरह और फुटकर काम कई गुना बढ़ गया है. आमदनी के साथ खर्च भी बढ़े हैं. कई आदमी नए रखे गए हैं, मुलाजिमों को मजदूरी के साथ कमीशन भी मिलता है मगर खालिस नफा पहले के मुकाबले में चौगुने के करीब है.

हरनामदास ने बड़े ध्यान से वे बातें सुनीं. वह गौर से दीनानाथ के चेहरे की तरफ देख रहे थे. शायद उस के दिल में पैठ कर सच्चाई की तह तक पहुंचना चाहते थे. संदेहपूर्ण स्वर में बोले—दीनानाथ, तुम कभी मुझ से झूठ नहीं बोलते थे लेकिन तो भी मुझे इन बातों पर यकीन नहीं आता और जब तक अपनी आंखों से देख न लूंगा, यकीन न आएगा.

दीनानाथ कुछ निराश हो कर बिदा हुआ. उसे आशा थी कि लाला साहब तरक्की और कारगुजारी की बात सुनते ही फूले न समाएंगे और मेरी मेहनत की दाद देंगे. उस बेचारे को न मालूम था कि कुछ दिलों में संदेह की जड़ इतनी मजबूत होती है कि सबूत और दलील के हमले उस पर कुछ असर नहीं कर सकते. यहां तक कि वह अपनी आंख से देखने को भी धोखा या तिलिस्म समझते हैं.

दीनानाथ के चले जाने के बाद लाला हरनामदास कुछ देर तक गहरे विचार में डूबे रहे और फिर यकायक कहार से बग्घी मंगवाई, लाठी के सहारे बग्घी में आ बैठे और उसे अपने चक्कीघर चलने का हुक्म दिया.

दोपहर का वक्त था. कारखानों के मजदूर खाना खाने के लिए गोल के गोल भागे चले आते थे. मगर हरिदास के कारखाने में काम जारी था. बग्घी हाते में दाखिल हुई. दोनों तरफ फूलों की कतारें नजर आईं, माली क्यारियों में पानी दे रहा था. ठेले और गाड़ियों के मारे बग्घी को निकलने की जगह न मिलती थी. जिधर निगाह जाती थी, सफाई और हरियाली नजर आती थी.

हरिदास अपने मुहर्रिर को कुछ खतों का मसौदा लिखा रहा था कि बूढ़े लालाजी लाठी टेकते हुए कारखाने में दाखिल हुए. हरिदास फौरन उठ खड़ा हुआ और उन्हें हाथों का सहारा देते हुए बोला—आप ने कहला क्यों न भेजा कि मैं आना चाहता हूं, पालकी मंगवा देता. आप को बहुत तकलीफ हुई.'

यह कह कर उस ने एक आरामकुर्सी बैठने के लिए खिसका दी. कारखाने के कर्मचारी दौड़े और उन के चारों तरफ बहुत अदब के साथ खड़े हो गए.

हरनामदास कुर्सी पर बैठ गए और बोरों के छत चूमने वाले ढेर पर नजर दौड़ा कर बोले—मालूम होता है दीनानाथ सच कहता था. मुझे यहां कई नई सूरतें नजर आती हैं. भला कितना काम रोज होता है?

हरिदास—आजकल काम ज्यादा आ गया था इसलिए कोई पांच सौ मन रोजाना तैयार हो जाता था, लेकिन औसत ढाई सौ मन का रहेगा. मुझे नई मशीन की कीमत अदा करनी थी इसलिए अकसर रात को भी काम होता है.

हरनामदास—कुछ कर्ज लेना पड़ा?

हरिदास—एक कौड़ी भी नहीं. सिर्फ मशीन की आधी कीमत बाकी है.

हरनामदास के चेहरे पर इत्मीनान का रंग नजर आया. संदेह ने विश्वास को जगह दी. प्यार भरी आंखों से लड़के की तरफ देखा और करुण स्वर में बोले—बेटा, मैं ने तुम्हारे ऊपर बड़ा जुल्म किया, मुझे माफ करो. मुझे आदमियों की पहचान का बड़ा घमंड था, लेकिन मुझे बहुत धोखा हुआ. मुझे अब से बहुत पहले इस काम से हाथ खींच लेना चाहिए था. मैं ने तुम्हें बहुत नुकसान पहुंचाया. यह बीमारी बड़ी मुबारक है जिस ने मुझे तुम्हारी परख का मौका दिया और तुम्हें अपनी लियाकत दिखाने का. काश! यह हमला पांच साल पहले ही हुआ होता. ईश्वर तुम्हें खुश रखे और हमेशा उन्नति दे, यही तुम्हारे बूढ़े बाप का आशीर्वाद है.

घासवाली

मुलिया हरीहरी घास का गट्ठा ले कर आई, तो उस का गेहुआं रंग कुछ तमतमाया हुआ था और बड़ीबड़ी मदभरी आंखों में शंका समाई हुई थी.

महावीर ने उस का तमतमाया हुआ चेहरा देख कर पूछा—क्या है मुलिया, आज कैसा जी है.

मुलिया ने कुछ जवाब न दिया. उस की आंखें डबडबा गईं!

महावीर ने समीप आ कर पूछा—क्या हुआ है, बताती क्यों नहीं? किसी ने कुछ कहा है, अम्मां ने डांटा है, क्यों इतनी उदास है?

मुलिया ने सिसक कर कहा—कुछ नहीं, हुआ क्या है, अच्छी तो हूं?

महावीर ने मुलिया को सिर से पांव तक देख कर कहा—चुपचाप रोएगी, बताएगी नहीं?

मुलिया ने बात टाल कर कहा—कोई बात भी हो, तो बताऊं.

मुलिया इस ऊसर में गुलाब का फूल थी. गेहुआं रंग था, हिरन की सी आंखें, नीचे खिंचा हुआ चिबुक, कपोलों पर हलकी लालिमा, बड़ीबड़ी नुकीली पलकें, आंखों में एक विचित्र आर्द्रता, जिस में एक स्पष्ट वेदना, एक मूक व्यथा झलकती रहती थी. मालूम नहीं चमारों के इस घर में वह अप्सरा कहां से आ गई थी. क्या उस का कोमल फूल सा गात इस योग्य था कि सिर पर घास की टोकरी रख कर बेचने जाती?

इस गांव में भी ऐसे लोग मौजूद थे, जो उस के तलवों के नीचे आंखें बिछाते थे, उस की एक चितवन के लिए तरसते थे, जिन से अगर वह एक शब्द भी बोलती, तो निहाल हो जाते; लेकिन उसे आए साल भर से अधिक हो गया, किसी ने उसे युवकों की तरफ ताकते या बातें करते नहीं देखा. वह घास लिए निकलती, तो ऐसा मालूम होता, मानो उषा का प्रकाश, सुनहरे आवरण में रंजित, अपनी छटा बिखेरता जाता हो. कोई गजलें गाता, कोई छाती पर हाथ रखता; पर मुलिया नीची आंख किए अपनी राह चली जाती.

लोग हैरान हो कर कहते—इतना अभिमान! महावीर में ऐसे क्या सुरखाब के पर लगे हैं, ऐसा अच्छा जवान भी तो नहीं, न जाने यह कैसे उस के साथ रहती है!

मगर आज ऐसी बात हो गई, जो इस जाति की और युवतियों के लिए चाहे गुप्त संदेश होती, मुलिया के लिए हृदय का शूल थी. प्रभात का समय था, पवन आम के बौर की सुगंधि से मतवाला हो रहा है, आकाश पृथ्वी पर सोने की वर्षा कर रहा था.

मुलिया सिर पर झौआ रखे घास छीलने चली, तो उस का गेहुआं रंग प्रभात की

सुनहरी किरणों से कुंदन की तरह दमक उठा.

एकाएक युवक चैनसिंह सामने से आता हुआ दिखाई दिया. मुलिया ने चाहा की कतरा कर निकल जाए; मगर चैनसिंह ने उस का हाथ पकड़ लिया और बोला—मुलिया, तुझे क्या मुझ पर जरा भी दया नहीं आती?

मुलिया का वह फूल सा खिला हुआ चेहरा ज्वाला की तरह दहक उठा. वह जरा भी नहीं डरी, जरा भी न झिझकी, झौआ जमीन पर गिरा दिया, और बोली—मुझे छोड़ दो, नहीं तो मैं चिल्लाती हूं.

चैनसिंह को आज जीवन में एक नया अनुभव हुआ. नीची जातों में रूप माधुर्य का इस के सिवा और काम ही क्या है कि वह ऊंची जातिवालों का खिलौना बने. ऐसे कितने ही मार्क उस ने जीते थे; पर आज मुलिया के चेहरे पर वह रंग, उस का वह क्रोध, वह अभिमान देख कर उस के छक्के छूट गए. उस ने लज्जित हो कर उस का हाथ छोड़ दिया.

मुलिया वेग से आगे बढ़ गई. संघर्ष की गरमी में चोट की व्यथा नहीं होती, पीछे से टीस होने लगती है. मुलिया जब कुछ दूर निकल गई, तो क्रोध और भय तथा अपनी बेकसी को अनुभव कर के उस की आंखों में आंसू भर आए. उस ने कुछ देर जब्त किया, फिर सिसकसिसक कर रोने लगी. अगर वह इतनी गरीब न होती, तो किसी की मजाल थी कि इस तरह उस का अपमान करता!

वह रोती जाती थी और घास छीलती जाती थी. महावीर का क्रोध वह जानती थी. अगर उस से कह दे, तो वह इस ठाकुर के खून का प्यासा हो जाएगा. फिर न जाने क्या हो! इस खयाल से उस के रोएं खड़े हो गए. इसीलिए उस ने महावीर के प्रश्नों का कोई उत्तर न दिया.

2

दूसरे दिन मुलिया घास के लिए न गई. सास ने पूछा—तू क्यों नहीं जाती? और सब तो चली गईं?

मुलिया ने सिर झुका कर कहा—मैं अकेली न जाऊंगी.

सास ने बिगड़ कर कहा—अकेले क्या तुझे बाघ उठा ले जाएगा?

मुलिया ने और सिर झुका लिया और दबी हुई आवाज से बोली—सब मुझे छेड़ते हैं.

सास ने डांटा—न तू औरों के साथ जाएगी, न अकेली जाएगी, तो फिर जाएगी कैसे! यह साफसाफ क्यों नहीं कहती कि मैं न जाऊंगी. न जाएगी तो यहां मेरे घर में रानी बन के निबाह न होगा. किसी को चाम नहीं प्यारा होता, काम प्यारा होता है. तू बड़ी सुंदर है, तो तेरी सुंदरता ले कर चाटूं? उठा झाबा और घास ला!

द्वार पर नीम के दरख्त के साए में महावीर खड़ा घोड़े को मल रहा था. उस ने मुलिया को रोनी सूरत बनाए जाते देखा; पर कुछ बोल न सका. उस का बस चलता तो मुलिया को कलेजे में बिठा लेता, आंखों में छिपा लेता; लेकिन घोड़े का पेट भरना तो जरूरी था. घास मोल ले कर खिलाए, तो बारह आने रोज से कम न पड़े. ऐसी मजदूरी ही कौन होती है. मुश्किल से डेढ़दो रुपए मिलते हैं, वह भी कभी मिले, कभी न मिले.

जब से ये सत्यानाशी लारियां चलने लगी हैं; इक्केवालों की बधिया बैठ गई है. कोई

सेंत भी नहीं पूछता. महाजन से डेढ़ सौ रुपए उधार ले कर इक्का और घोड़ा खरीदा था; मगर लारियों के आगे इक्के को कौन पूछता है. महाजन का सूद भी तो न पहुंच सकता था, मूल का कहना ही क्या! ऊपरी मन से बोला—न मन हो, तो रहने दो, देखी जाएगी.

इस दिलजोई से मुलिया निहाल हो गई. बोली—घोड़ा खाएगा क्या?

आज उस ने कल का रास्ता छोड़ दिया और खेतों की मेड़ों से होती हुई चली. बारबार सतर्क आंखों से इधरउधर ताकती जाती थी. दोनों तरफ ऊख के खेत खड़े थे. जरा भी खड़खड़ाहट होती, उस का जी सन्न हो जाता—कहीं कोई ऊख में छिपा न बैठा हो. मगर कोई नई बात न हुई.

ऊख के खेत निकल गए, आमों का बाग निकल गया; सिंचे हुए खेत नजर आने लगे. दूर के कुएं पर पुर चल रहा था. खेतों की मेड़ों पर हरीहरी घास जमी हुई थी. मुलिया का जी ललचाया. यहां आध घंटे में जितनी घास छिल सकती है, सूखे मैदान में दोपहर तक न छिल सकेगी! यहां देखता ही कौन है. कोई चिल्लाएगा, तो चली जाऊंगी.

वह बैठ कर घास छीलने लगी और एक घंटे में उस का झाबा आधे से ज्यादा भर गया. वह अपने काम में इतनी तन्मय थी कि उसे चैनसिंह के आने की खबर ही न हुई. एकाएक उस ने आहट पा कर सिर उठाया, तो चैनसिंह को खड़ा देखा.

मुलिया की छाती धक से हो गई. जी में आया भाग जाए, झाबा उलट दे और खाली झाबा ले कर चली जाए; पर चैनसिंह ने कई गज के फासले से ही रुक कर कहा—डर मत, डर मत, भगवान जानता है! मैं तुझ से कुछ न बोलूंगा. जितनी घास चाहे छील ले, मेरा ही खेत है.

मुलिया के हाथ सुन्न हो गए, खुरपी हाथ में जम सी गई, घास नजर ही न आती थी. जी चाहता था; जमीन फट जाए और मैं उस में समा जाऊं. जमीन आंखों के सामने तैरने लगी.

चैनसिंह ने आश्वासन दिया—छीलती क्यों नहीं? मैं तुम से कुछ कहता थोड़े ही हूं. यहीं रोज चली आया कर, मैं छील दिया करूंगा.

मुलिया चित्रलिखित सी बैठी रही.

चैनसिंह ने एक कदम आगे बढ़ाया और बोला—तू मुझ से इतना डरती क्यों है. क्या तू समझती है, मैं आज भी तुझे सताने आया हूं? ईश्वर जानता है, कल भी तुझे सताने के लिए मैं ने तेरा हाथ नहीं पकड़ा था. तुझे देख कर आप ही आप हाथ बढ़ गए. मुझे कुछ सुध ही न रही. तू चली गई, तो मैं वहीं बैठ कर घंटों रोता रहा. जी में आता था, हाथ काट डालूं. कभी जी चाहता था, जहर खा लूं. तभी से तुझे ढूंढ़ रहा हूं, आज तू इस रास्ते से चली आई.

—मैं सारा हार छानता हुआ यहां आया हूं. अब जो सजा तेरे जी में आए, दे दे. अगर तू मेरा सिर भी काट ले, तो गरदन न हिलाऊंगा! मैं शोहदा था, लुच्चा था, लेकिन जब से तुझे देखा है, मेरे मन से सारी खोट मिट गई है. अब तो यही जी में आता है कि तेरा कुत्ता होता और तेरे पीछेपीछे चलता, तेरा घोड़ा होता, तब तो तू अपने हाथों से मेरे सामने घास डालती. किसी तरह यह चोला तेरे काम आए, मेरे मन की यह सब से बड़ी लालसा है. मेरी जवानी काम न आए, अगर मैं किसी खोट से ये बातें कर रहा हूं. बड़ा भागवान था

महावीर, जो ऐसी देवी उसे मिली.

मुलिया चुपचाप सुनती रही, फिर नीचा सिर कर के भोलेपन से बोली—तो तुम मुझे क्या करने को कहते हो?

चैनसिंह और समीप आ कर बोला—बस, तेरी दया चाहता हूं.

मुलिया ने सिर उठा कर उस की ओर देखा. उस की लज्जा न जाने कहां गायब हो गई. चुभते हुए शब्दों से बोली—तुम से एक बात कहूं, बुरा तो न मानोगे? तुम्हारा ब्याह हो गया या नहीं?

चैनसिंह ने दबी जबान से कहा—ब्याह तो हो गया, लेकिन ब्याह क्या है, खिलवाड़ है.

मुलिया के होंठों पर अवहेलना की मुसकराहट झलक पड़ी, बोली—फिर भी अगर मेरा आदमी तुम्हारी औरत से इसी तरह की बातें करता, तो तुम्हें कैसा लगता? तुम उस की गरदन काटने पर तैयार हो जाते कि नहीं? बोलो! क्या समझते हो कि महावीर चमार है तो उस की देह में लहू नहीं है, उसे लज्जा नहीं है, अपनी मर्यादा का विचार नहीं है? मेरा रूप रंग तुम्हें भाता है. क्या घाट के किनारे मुझ से कहीं सुंदर औरतें नहीं घूमा करतीं? मैं उन के तलवों की बराबरी भी नहीं कर सकती. तुम उन में से किसी से क्यों नहीं दया मांगते! क्या उन के पास दया नहीं है? मगर वहां तुम न जाओगे; क्योंकि वहां जाते तुम्हारी छाती दहलती है. मुझ से दया मांगते हो, इसलिए न कि मैं चमारिन हूं, नीच जाति हूं और नीच जाति की औरत जरा सी घुड़की धमकी व जरा से लालच से तुम्हारी मुट्ठी में आ जाएगी. कितना सस्ता सौदा है. ठाकुर हो न, ऐसा सस्ता सौदा क्यों छोड़ने लगे?

चैनसिंह लज्जित हो कर बोला—मूला, यह बात नहीं. मैं सच कहता हूं, इस में ऊंचनीच की बात नहीं है. सब आदमी बराबर हैं. मैं तो तेरे चरणों पर सिर रखने को तैयार हूं.

मुलिया—इसीलिए न कि जानते हो, मैं कुछ कर नहीं सकती. जा कर किसी खतरानी के चरणों पर सिर रखो, तो मालूम हो कि चरणों पर सिर रखने का क्या फल मिलता है. फिर यह सिर तुम्हारी गरदन पर न रहेगा.

चैनसिंह मारे शर्म के जमीन पर गड़ा जाता था. उस का मुंह ऐसा सूख गया था, मानो महीनों की बीमारी से उठा हो. मुंह से बात न निकलती थी. मुलिया इतनी वाकपटु है, इस का उसे गुमान भी न था.

मुलिया फिर बोली—मैं भी रोज बाजार जाती हूं. बड़ेबड़े घरों का हाल जानती हूं. मुझे किसी बड़े घर का नाम बता दो, जिस में कोई साईस, कोई कोचवान, कोई कहार, कोई पंडा, कोई महाराज न घुसा बैठा हो? यह सब बड़े घरों की लीला है. और वे औरतें जो कुछ करती हैं, ठीक करती हैं! उन के घर वाले भी तो चमारिनों और कहारिनों पर जान देते फिरते हैं. लेनादेना बराबर हो जाता है. बेचारे गरीब आदमियों के लिए यह बातें कहां?

—मेरे आदमी के लिए संसार में जो कुछ हूं, मैं हूं. वह किसी दूसरी मेहरिया की ओर आंख उठा कर भी नहीं देखता. संयोग की बात है कि मैं तनिक सुंदर हूं, लेकिन मैं कालीकलूटी भी होती, तब भी वह मुझे इसी तरह रखता. इस का मुझे विश्वास है. मैं चमारिन हो कर भी इतनी नीच नहीं हूं कि विश्वास का बदला खोट से दूं. हां, वह अपने

मन की करने लगे, मेरी छाती पर मूंग दलने लगे, तो मैं भी उस की छाती पर मूंग दलूंगी. तुम मेरे रूप ही के दीवाने हो न! आज मुझे माता निकल आएं, कानी हो जाऊं, तो मेरी ओर ताकोगे भी नहीं. बोलो, झूठ कहती हूं?

चैनसिंह इनकार न कर सका.

मुलिया ने उसी गर्व से भरे हुए स्वर में कहा—लेकिन मेरी एक नहीं, दोनों आंखें फूट जाएं, तब भी वह मुझे इसी तरह रखेगा. मुझे उठाएगा, बैठाएगा, खिलाएगा. तुम चाहते हो, मैं ऐसे आदमी के साथ कपट करूं? जाओ, अब मुझे कभी न छेड़ना, नहीं, अच्छा न होगा.

3

जवानी जोश है, बल है, दया है, साहस है, आत्मविश्वास है, गौरव है और सब कुछ जो जीवन को पवित्र, उज्ज्वल और पूर्ण बना देता है. जवानी का नशा घमंड है, निर्दयता है, स्वार्थ है, शेखी है, विषयवासना है, कटुता है और वह सब कुछ जो जीवन को पशुता, विकार और पतन की ओर ले जाता है.

चैनसिंह पर जवानी का नशा था. मुलिया के शीतल छींटों ने नशा उतार दिया. जैसे उबलती हुई चाशनी में पानी के छींटे पड़ जाने से फेन मिट जाता है, मैल निकल जाता है और निर्मल, शुद्ध रस निकल आता है. जवानी का नशा जाता रहा, केवल जवानी रह गई. कामिनी के शब्द जितनी आसानी से दीन और ईमान को गारत कर सकते हैं, उतनी ही आसानी से उन का उद्धार भी कर सकते हैं.

चैनसिंह उस दिन से दूसरा आदमी हो गया. गुस्सा उस की नाक पर रहता था, बातबात पर मजदूरों को गालियां देना, डांटना और पीटना उस की आदत थी. आसामी उस से थरथर कांपते थे.

मजदूर उसे आते देख कर अपने काम में चुस्त हो जाते थे; पर ज्यों ही उस ने इधर पीठ फेरी और उन्होंने चिलम पीना शुरू किया. सब दिल में उस से जलते थे, उसे गालियां देते थे. मगर उस दिन से चैनसिंह इतना दयालु, इतना गंभीर, इतना सहनशील हो गया कि लोगों को आश्चर्य होता था.

कई दिन गुजर गए थे. एक दिन संध्या समय चैनसिंह खेत देखने गया. पुर चल रहा था. उस ने देखा कि एक जगह नाली टूट गई है, और सारा पानी बहा चला जाता है. क्यारियों में पानी बिलकुल नहीं पहुंचता, मगर क्यारी बनाने वाली बुढ़िया चुपचाप बैठी है.

उसे इस की जरा भी फिक्र नहीं है कि पानी क्यों नहीं आता. पहले यह दशा देख कर चैनसिंह आपे से बाहर हो जाता. उस औरत की उस दिन की मजूरी काट लेता और पुर चलाने वालों को घुड़कियां जमाता, पर आज उसे क्रोध नहीं आया. उस ने मिट्टी ले कर नाली बांध दी और खेत में जा कर बुढ़िया से बोला—तू यहां बैठी है और पानी सब बहा जा रहा है.

बुढ़िया घबड़ा कर बोली—अभी खुल गई होगी. राजा! मैं अभी जा कर बंद किए देती हूं.

यह कहती हुई वह थरथर कांपने लगी. चैनसिंह ने उस की दिलजोई करते हुए कहा —भाग मत, भाग मत, मैं ने नाली बंद कर दी. बुढ़ऊ कई दिन से नहीं दिखाई दिए, कहीं काम पर जाते हैं कि नहीं?

बुढ़िया गद्‌गद हो कर बोली—आजकल तो खाली ही बैठे हैं भैया, कहीं काम नहीं लगता.

चैनिसंह ने नम्र भाव से कहा—तो हमारे यहां लगा दो. थोड़ा सा सन रखा है, उसे कात दें.

यह कहता हुआ वह कुएं की ओर चला गया. यहां चार पुर चल रहे थे; पर इस वक्त दो हंकवे बेर खाने गए थे. चैनसिंह को देखते ही मजूरों के होश उड़ गए. ठाकुर ने पूछा, दो आदमी कहां गए, तो क्या जवाब देंगे? सब के सब डांटे जाएंगे. बेचारे दिल में सहमे जा रहे थे.

चैनसिंह ने पूछा—वह दोनों कहां चले गए?

किसी के मुंह से आवाज न निकली. सहसा सामने से दोनों मजूर धोती के एक कोने में बेर भरे आते दिखाई दिए. खुशखुश बातें करते चले आ रहे थे. चैनसिंह पर निगाह पड़ी, तो दोनों के प्राण सूख गए. पांव मनमन भर के हो गए. अब न आते बनता है, न जाते. दोनों समझ गए कि आज डांट पड़ी, शायद मजूरी भी कट जाए. चाल धीमी पड़ गई.

इतने में चैनसिंह ने पुकारा—बढ़ आओ, बढ़ आओ, कैसे बेर हैं? लाओ, जरा मुझे भी दो, मेरे ही पेड़ के हैं न?

दोनों और भी सहम उठे. आज ठाकुर जीता न छोड़ेगा. कैसा मिठामिठा कर बोला रहा है. उतनी ही भिगोभिगो कर लगाएगा. बेचारे और भी सिकुड़ गए.

चैनसिंह ने फिर कहा—जल्दी से आओ जी, पक्कीपक्की सब मैं ले लूंगा. जरा एक आदमी लपक कर घर से थोड़ा सा नमक तो ले लो! (बाकी दोनों मजूरों से) तुम भी दोनों आ जाओ, उस पेड़ के बेर मीठे होते हैं. बेर खा लें, काम तो करना ही है.

अब दोनों भगोड़ों को कुछ ढारस हुआ. सभी ने आ कर सब बेर चैनसिंह के आगे डाल दिए और पक्के छांट कर उसे देने लगे. एक आदमी नमक लाने दौड़ा. आध घंटे तक चारों पुर बंद रहे. जब सब बेर उड़ गए और ठाकुर चलने लगे, तो दोनों अपराधियों ने हाथ जोड़ कर कहा—भैया जी, आज जान बकसी हो जाए, बड़ी भूख लगी थी, नहीं तो कभी न जाते.

चैनसिंह ने नम्रता से कहा—तो इस में बुराई क्या हुई? मैं ने भी तो बेर खाए. एकआध घंटे का हरज हुआ यही न? तुम चाहोगे; तो घंटे भर का काम आध घंटे में कर दोगे. न चाहोगे, दिन भर में घंटे भर का भी काम न होगा.

चैनसिंह चला गया, तो चारों बातें करने लगे.

एक ने कहा—मालिक इस तरह रहें, तो काम करने में जी लगता है. यह नहीं कि हरदम छाती पर सवार.

दूसरा—मैं ने तो समझा; आज कच्चा खा जाएंगे!

तीसरा—कई दिन से देखता हूं, मिजाज नरम हो गया है.

चौथा—सांझ को पूरी मजूरी मिले तो कहना.

पहला—तुम तो हो गोबरगनेस. आदमी का रुख नहीं पहचानते.

दूसरा—अब खूब दिल लगा कर काम करेंगे.

तीसरा—और क्या! जब उन्होंने हमारे ऊपर छोड़ दिया, तो हमारा भी धरम है कि कोई कसर न छोड़ें.

चौथा—मुझे तो भैया, ठाकुर पर अब भी विश्वास नहीं आता.

4

एक दिन चैनसिंह को किसी काम से कचहरी जाना था. पांच मील का सफर था. यों तो वह बराबर अपने घोड़े पर जाया करता था; पर आज धूप बड़ी तेज हो रही थी, सोचा इक्के पर चला चलूं. महावीर को कहला भेजा मुझे लेते जाना.

कोई नौ बजे महावीर ने पुकारा. चैनसिंह तैयार बैठा था. चटपट इक्के पर बैठ गया. मगर घोड़ा इतना दुबला हो रहा था, इक्के की गद्दी इतनी मैली और फटी हुई, सारा सामान इतना रद्दी कि चैनसिंह को उस पर बैठते शर्म आई. पूछा—यह सामान क्यों बिगड़ा हुआ है, महावीर? तुम्हारा घोड़ा तो इतना दुबला कभी न था; क्या आजकल सवारियां कम हैं क्या?

महावीर ने कहा—नहीं मालिक, सवारियां काहे नहीं हैं; मगर लारियों के सामने इक्के को कौन पूछता है. कहां दो ढाई, तीन की मजूरी कर के घर लौटता था, कहां अब बीस आने पैसे भी नहीं मिलते? क्या जानवर को खिलाऊं क्या आप खाऊं? बड़ी विपत्ति में पड़ा हूं. सोचता हूं इक्का घोड़ा बेचबाच कर आप लोगों की मजूरी कर लूं, पर कोई गाहक नहीं लगता. ज्यादा नहीं, तो बारह आने तो घोड़े ही को चाहिए, घास ऊपर से. जब अपना ही पेट नहीं चलता, तो जानवर को कौन पूछे.

चैनसिंह ने उस के फटे हुए कुरते की ओर देख कर कहा—दोचार बीघे खेती क्यों नहीं कर लेते?

महावीर सिर झुका कर बोला—खेती के लिए बड़ा पौरुख चाहिए मालिक! मैं ने तो यही सोचा है कि कोई गाहक लग जाए, तो इक्के को औनेपौने निकाल दूं, फिर घास छील कर बाजार ले जाया करूं. आजकल सासपतोहू दोनों छीलती हैं. तब जा कर दसबारह आने पैसे नसीब होते हैं.

चैनसिंह ने पूछा—तो बुढ़िया बाजार जाती होगी?

महावीर लजाता हुआ बोला—नहीं भैया, वह इतनी दूर कहां चल सकती है. घरवाली चली जाती है. दोपहर तक घास छीलती है, तीसरे पहर बाजार जाती है. वहां से घड़ी रात गए लौटती है. हलकान हो जाती है भैया, मगर क्या करूं, तकदीर से क्या जोर.

चैनसिंह कचहरी पहुंच गए और महावीर सवारियों की टोह में इधरउधर इक्के को घुमाता हुआ शहर की तरफ चला गया. चैनसिंह ने उसे पांच बजे आने को कह दिया.

कोई चार बजे चैनसिंह कचहरी से फुरसत पा कर बाहर निकले. हाते में पान की दुकान थी, जरा और आगे बढ़ कर एक घना बरगद का पेड़ था उस की छांह में बीसों ही तांगे; इक्के, फिटनें खड़ी थीं. घोड़े खोल दिए गए थे. वकीलों, मुख्तारों और अफसरों की सवारियां यहीं खड़ी रहती थीं.

चैनसिंह ने पानी पिया, पान खाया और सोचने लगा कोई लारी मिल जाए, तो जरा

शहर चला जाऊं कि उस की निगाह एक घासवाली पर पड़ गई. सिर पर घास का झाबा रखे सईसों से मोल भाव कर रही थी.

चैनसिंह का हृदय उछल पड़ा—यह तो मुलिया है! बनीठनी, एक गुलाबी साड़ी पहने कोचवानों से मोलतोल कर रही थी. कई कोचवान जमा हो गए थे. कोई उस से दिल्लगी करता था, कोई घूरता था, कोई हंसता था.

एक कालेकलूटे कोचवान ने कहा—मूला, घास तो उड़के अधिक से अधिक छह आने की है.

मुलिया ने उन्माद पैदा करने वाली आंखों से देख कर कहा—छह आने पर लेना है, तो सामने घसियारिनें बैठी हैं, चले जाओ, दोचार पैसे कम में पा जाओगे, मेरी घास तो बारह आने में ही जाएगी.

एक अधेड़ कोचवान ने फिटन के ऊपर से कहा—तेरा जमाना है, बारह आने नहीं एक रुपया मांग! लेने वाले झख मारेंगे और लेंगे. निकलने दे वकीलों को, अब देर नहीं है.

एक तांगेवाले ने, जो गुलाबी पगड़ी बांधे हुए था, कहा—बुढ़ऊ के मुंह में पानी भर आया, अब मुलिया काहे को किसी की ओर देखेगी!

चैनसिंह को ऐसा क्रोध आ रहा था कि इन दुष्टों को जूते से पीटे. सब के सब कैसे उस की ओर टकटकी लगाए ताक रहे हैं, आंखों से जी जाएंगे. और मुलिया भी यहां कितनी खुश है! न लजाती है, न झिझकती है, न दबती है. कैसा मुसकरामुसकरा कर, रसीली आंखों से देखदेख कर, सिर का आंचल खिसकाखिसका कर मुंह मोड़मोड़ कर बातें कर रही है. वही मुलिया, जो शेरनी की तरह तड़प उठी थी.

इतने में चार बजे. अमले और वकील मुख्तारों का एक मेला सा निकल पड़ा. अमले लारियों पर दौड़े. वकील मुख्तार इन सवारियों की ओर चले. कोचवानों ने भी चटपट घोड़े जोते. कई महाशयों ने मुलिया को रसिक नेत्रों से देखा और अपनीअपनी गाड़ियों पर जा बैठे.

एकाएक मुलिया घास का झाबा लिए उस फिटन के पीछे दौड़ी. फिटन में एक अंगरेजी फैशन के जवान वकील साहब बैठे थे. उन्होंने पायदान के पास घास रखवा ली, जेब से कुछ निकाल कर मुलिया को दिया. मुलिया मुसकराई, दोनों में कुछ बातें भी हुईं, जो चैनसिंह न सुन सके.

एक क्षण में मुलिया प्रसन्न मुख घर की ओर चली. चैनसिंह पानवाले की दुकान पर विस्मृति की दशा में खड़ा रहा. पानवाले ने दुकान बढ़ाई, कपड़े पहने और केबिन का द्वार बंद कर के नीचे उतरा तो चैनसिंह की समाधि टूटी. पूछा—क्या दुकान बंद कर दी?

पानवाले ने सहानुभूति दिखा कर कहा—इस की दवा करो ठाकुर साहब, यह बीमारी अच्छी नहीं है!

चैनसिंह ने चकित हो कर पूछा—कैसी बीमारी?

पानवाला बोला—कैसी बीमारी! आध घंटे से यहां खड़े हो जैसे कोई मुरदा खड़ा हो. सारी कचहरी खाली हो गई, सब दुकानें बंद हो गईं, मेहतर तक झाड़ू लगा कर चल दिए; तुम्हें कुछ खबर हुई? यह बुरी बीमारी है, जल्दी दवा कर डालो.

चैनसिंह ने छड़ी संभाली और फाटक की ओर चला कि महावीर का इक्का सामने से

आता दिखाई दिया.

5

कुछ दूर इक्का निकल गया, तो चैनसिंह ने पूछा—आज कितने पैसे कमाए, महावीर?

महावीर ने हंस कर कहा—आज तो मालिक, दिन भर खड़ा ही रह गया. किसी ने बेगार में भी न पकड़ा. ऊपर से चार पैसे की बीड़ियां पी गया.

चैनसिंह ने जरा देर के बाद कहा—मेरी एक सलाह है. तुम मुझ से एक रुपया रोज ले लिया करो. बस, जब मैं बुलाऊं तो इक्का ले कर चले आया करो. तब तो तुम्हारी घरवाली को घास ले कर बाजार न आना पड़ेगा. बोलो, मंजूर है?

महावीर ने सजल आंखों से देख कर कहा—मालिक, आप ही का तो खाता हूं. आप की परजा हूं! जब मरजी हो, पकड़ मंगवाइए. आप से रुपए....

चैनसिंह ने बात काट कर कहा—नहीं, मैं तुम से बेगार नहीं लेना चाहता. तुम मुझ से एक रुपया रोज ले जाया करो. घास ले कर घरवाली को बाजार मत भेजा करो. तुम्हारी आबरू मेरी आबरू है. और भी रुपएपैसे का जब काम लगे, बेखटके चले आया करो. हां, देखो, मुलिया से इस बात की भूल कर भी चर्चा न करना. क्या फायदा!

कई दिनों के बाद संध्या समय मुलिया चैनसिंह से मिली. चैनसिंह असामियों से मालगुजारी वसूल कर के घर की ओर लपका जा रहा था कि उसी जगह जहां उस ने मुलिया की बांह पकड़ी थी, मुलिया की आवाज कानों में आई.

उस ने ठिठक कर पीछे देखा, तो मुलिया दौड़ी आ रही थी. बोला—क्या है मूला! क्यों दौड़ती हो, मैं तो खड़ा हूं?

मुलिया ने हांफते हुए कहा—कई दिन से तुम से मिलना चाहती थी. आज तुम्हें आते देखा, तो दौड़ी. अब मैं घास बेचने नहीं जाती.

चैनसिंह ने कहा—बहुत अच्छी बात है!

'क्या तुम ने मुझे कभी घास बेचते देखा है?'

'हां, एक दिन देखा था. क्या महावीर ने तुझ से सब कह डाला? मैं ने तो मना कर दिया था.'

'वह मुझ से कोई बात नहीं छिपाता.'

दोनों एक क्षण चुप खड़े रहे. किसी को कोई बात न सूझती थी. एकाएक मुलिया ने मुसकरा कर कहा—यहां तुम ने मेरी बांह पकड़ी थी.

चैनसिंह ने लज्जित हो कर कहा—उस को भूल जाओ, मूला. मुझ पर न जाने कौन भूत सवार था.

मुलिया गदगद कंठ से बोली—उसे क्यों भूल जाऊं. उसी बांह गहे की लाज तो निभा रहे हो. गरीबी आदमी से जो चाहे कराए. तुम ने मुझे बचा लिया.

फिर दोनों चुप हो गए.

जरा देर के बाद मुलिया ने फिर कहा—तुम ने समझा होगा, मैं हंसने बोलने में मग्न हो रही थी?

चैनसिंह ने बलपूर्वक कहा—नहीं मुलिया, मैं ने एक क्षण के लिए भी नहीं समझा.

मुलिया मुसकरा कर बोली—मुझे तुम से यही आशा थी, और है.

पवन सिंचे हुए खेतों में विश्राम करने जा रहा था, सूर्य निशा की गोद में विश्राम करने जा रहा था, और उस मलिन प्रकाश में चैनसिंह मुलिया की विलीन होती हुई रेखा को खड़ा देख रहा था!

अभिलाषा

कल पड़ोस में बड़ी हलचल मची. एक पान वाला अपनी स्त्री को मार रहा था. वह बेचारी बैठी रो रही थी, पर उस निर्दयी को उस पर लेशमात्र भी दया न आती थी.

आखिर स्त्री को भी क्रोध आ गया. उस ने खड़े हो कर कहा—बस, अब मारोगे, तो ठीक न होगा. आज से मेरा तुझ से कोई संबंध नहीं. मैं भीख मांगूंगी, पर तेरे घर न आऊंगी.

यह कह कर उस ने अपनी एक पुरानी साड़ी उठाई और घर से निकल पड़ी. पुरुष काठ के उल्लू की तरह खड़ा देखता रहा.

स्त्री कुछ दूर चल कर फिर लौटी और दुकान की संदूकची खोल कर कुछ पैसे निकाले. शायद अभी तक उसे ममता थी; पर उस निर्दयी ने तुरंत उस का हाथ पकड़ कर पैसे छीन लिए.

हाय री हृदयहीनता! अबला स्त्री के प्रति पुरुष का यह अत्याचार! एक दिन इसी स्त्री पर उस ने प्राण दिए होंगे, उस का मुंह जोहता रहा होगा; पर आज इतना निष्ठुर हो गया है, मानो कभी की जानपहचान ही नहीं.

स्त्री ने पैसे रख दिए और बिना कहेसुने चली गई. कौन जाने कहां!

मैं अपने कमरे की खिड़की से घंटों देखती रही कि शायद वह फिर लौटे या शायद पान वाला ही उसे मनाने जाए; पर दो में से एक बात भी न हुई.

आज मुझे स्त्री की सच्ची दशा का पहली बार ज्ञान हुआ. यह दुकान दोनों की थी. पुरुष तो मटरगश्ती किया करता था, स्त्री रातदिन बैठी सती होती थी. दसग्यारह बजे रात तक मैं उसे दुकान पर बैठी देखती थी. प्रातःकाल नींद खुलती, तब भी उसे बैठी पाती. नोचखसोट, काटकपट जितना पुरुष करता था, उस से कुछ अधिक ही स्त्री करती थी. पर पुरुष सब कुछ है, स्त्री कुछ भी नहीं! पुरुष जब चाहे उसे निकाल बाहर कर सकता है!

इस समस्या पर मेरा चित्त इतना अशांत हो गया कि नींद आंखों से भाग गई. बारह बज गए और मैं बैठी रही. आकाश पर निर्मल चांदनी छिटकी हुई थी. निशानाथ अपने रत्नजटित सिंहासन पर गर्व से फूले बैठे थे. बादल के छोटेछोटे टुकड़े धीरेधीरे चंद्रमा के समीप आते थे और फिर विकृत रूप में पृथक हो जाते थे, मानो श्वेतवसना सुंदरियां उस के हाथों दलित और अपमानित हो कर रुदन करती हुई चली जा रही हों. इस कल्पना ने मुझे इतना विकल किया कि मैं ने खिड़की बंद कर दी और पलंग पर आ बैठी.

मेरे प्रियतम निद्रा में मग्न थे. उन का तेजमय मुखमंडल इस समय मुझे कुछ चंद्रमा से ही मिलताजुलता मालूम हुआ. वही सहास छवि थी, जिस से मेरे नेत्र तृप्त हो जाते थे. वही

विशाल वक्ष था, जिस पर सिर रख कर मैं अपने अंतस्तल में एक कोमल, मधुर कंपन का अनुभव करती थी. वही सुदृढ़ बांहें थीं, जो मेरे गले में पड़ जाती थीं, तो मेरे हृदय में आनंद की हिलोरें सी उठने लगती थीं.

पर आज कितने दिन हुए, मैं ने उस मुख पर हंसी की उज्ज्वल रेखा नहीं देखी, न देखने को चित्त व्याकुल ही हुआ. कितने दिन हुए, मैं ने उस वक्ष पर सिर नहीं रखा और न वे बांहें मेरे गले में पड़ीं. क्यों? क्या मैं कुछ और हो गई, या पतिदेव ही कुछ और हो गए.

अभी कुछ बहुत दिन भी तो नहीं बीते, कुल पांच साल हुए हैं—कुल पांच साल, जब पतिदेव ने विकसित नेत्रों और लालायित अधरों से मेरा स्वागत किया था. मैं लज्जा से गरदन झुकाए हुए थी. हृदय में कितनी प्रबल उत्कंठा हो रही थी कि उन की मुख छवि देख लूं; पर लज्जावश सिर न उठा सकती.

आखिर एक बार मैं ने हिम्मत कर के आंखें उठाईं और यद्यपि दृष्टि आधे रास्ते से ही लौट आई, तो भी उस अर्द्ध दर्शन से मुझे जो आनंद मिला, क्या उसे कभी भूल सकती हूं. वह चित्र अब भी मेरे हृदय पट पर खिंचा हुआ है. जब कभी उस का स्मरण आ जाता है, हृदय पुलकित हो उठता है. उस आनंद स्मृति में अब भी वही गुदगुदी, वही सनसनी है! लेकिन अब रातदिन उस छवि के दर्शन करती हूं. उषाकाल, प्रातःकाल, मध्याह्नकाल, सांध्यकाल, निशाकाल आठों पहर उस को देखती हूं; पर हृदय में गुदगुदी नहीं होती.

वह मेरे सामने खड़े मुझ से बातें किया करते हैं. मैं क्रोशिए की ओर देखती रहती हूं. जब वह घर से निकलते थे, तो मैं द्वार पर आ कर खड़ी हो जाती थी. और, जब वह पीछे फिर कर मुसकरा देते थे तो मुझे मानो स्वर्ग का राज्य मिल जाता था.

मैं तीसरे पहर कोठे पर चढ़ जाती थी और उन के आने की बाट जोहने लगती थी. उन को दूर से आते देख कर मैं उन्मत्त सी हो कर नीचे आती और द्वार पर जा कर उन का अभिवादन करती. पर अब मुझे यह भी नहीं मालूम होता कि वह कब जाते और कब आते हैं. जब बाहर का द्वार बंद हो जाता है, तो समझ जाती हूं कि वह चले गए, जब द्वार खुलने की आवाज आती है, तो समझ जाती हूं कि आ गए. समझ में नहीं आता कि मैं ही कुछ और हो गई या पतिदेव ही कुछ और हो गए.

तब वह घर में बहुत न आते थे. जब उन की आवाज कानों में आ जाती तो मेरी देह में बिजली सी दौड़ जाती थी. उन की छोटीछोटी बातों, छोटेछोटे कामों को भी मैं अनुरक्त, मुग्ध नेत्रों से देखा करती थी. जब वह छोटे लाला को गोद में उठा कर प्यार करते थे, जब टामी का सिर थपथपा कर उसे लिटा देते थे, जब बूढ़ी भक्तिन को चिढ़ा कर बाहर भाग जाते थे, जब बाल्टियों में पानी भरभर पौधों को सींचते थे, तब ये आंखें उसी ओर लगी रहती थीं. पर अब वह सारे दिन घर में रहते हैं, मेरे सामने हंसते हैं, बोलते हैं, मुझे खबर भी नहीं होती. न जाने क्यों?

तब किसी दिन उन्होंने फूलों का एक गुलदस्ता मेरे हाथ में रख दिया था और मुसकराए थे. वह प्रणय का उपहार पा कर मैं फूली न समाई थी. केवल थोड़े से फूल और पत्तियां थीं; पर उन्हें देखने से मेरी आंखें किसी भांति तृप्त ही न होती थीं. कुछ देर हाथ में लिए रही, फिर अपनी मेज पर फूलदान में रख दिया. कोई काम करती होती, तो बारबार आ कर उस गुलदस्ते को देख जाती. कितनी बार उसे आंखों से लगाया, कितनी बार उसे

चूमा! कोई एक लाख रुपए भी देता, तो उसे न देती.

उस की एकएक पंखड़ी मेरे लिए एकएक रत्न थी. जब वह मुरझा गया, तो मैं ने उसे उठा कर अपने बक्स में रख दिया था. तब से उन्होंने मुझे हजारों चीजें उपहार में दी हैं—एक से एक रत्नजटित आभूषण हैं, एक से एक बहुमूल्य वस्त्र हैं और गुलदस्ते तो प्रायः नित्य ही लाते हैं; लेकिन इन चीजों को पा कर वह उल्लास नहीं होता. मैं उन चीजों को पहन कर आईने में अपना रूप देखती हूं और गर्व से फूल उठती हूं. अपनी हमजोलियों को दिखा कर अपना गौरव और उन की ईर्ष्या बढ़ाती हूं. बस.

अभी थोड़े ही दिन हुए हैं, उन्होंने मुझे एक चंद्रहार दिया है. जो इसे देखता है, मोहित हो जाता है. मैं भी उस की बनावट और सजावट पर मुग्ध हूं. मैं ने अपना संदूक खोला और उस गुलदस्ते को निकाल लाई. आह! उसे हाथ में लेते ही मेरी एकएक नस में बिजली दौड़ गई. हृदय के सारे तार कंपित हो गए. वे सूखी हुई पंखड़ियां, जो अब पीले रंग की हो गई थीं बोलती हुई मालूम होती थीं.

उस के सूखे, मुरझाए हुए मुखों के अस्फुटित कंपित, अनुराग में डूबे शब्द सांयसांय कर के निकलते हुए जान पड़ते थे; किंतु वह रत्न जटित, कांति से दमकता हुआ हार स्वर्ण और पत्थरों का एक समूह था, जिस में प्राण न थे, संज्ञा न थी, मर्म न था. मैं ने फिर गुलदस्ते को चूमा, कंठ से लगाया. आर्द्र नेत्रों से सींचा और फिर संदूक में रख आई. आभूषणों से भरा हुआ संदूक भी उस एक स्मृति चिह्न के सामने तुच्छ था. यह क्या रहस्य था.

फिर मुझे उन के पुराने पत्र की याद आ गई. उसे उन्होंने कालेज से मेरे पास भेजा था. उसे पढ़ कर मेरे हृदय में जो आनंद हुआ था, जो तूफान उठा था, आंखों से जो नदी बही थी, क्या उसे कभी भूल सकती हूं. उस पत्र को मैं ने अपनी सोहाग की पिटारी में रख दिया था. इस समय उस पत्र को पढ़ने को प्रबल इच्छा हुई. मैं ने पिटारी से वह पत्र निकाला. उसे स्पर्श करते ही मेरे हाथ कांपने लगे, हृदय में धड़कन होने लगी.

मैं कितनी देर उसे हाथ में लिए खड़ी रही, कह नहीं सकती. मुझे ऐसा मालूम हुआ कि मैं फिर वही हो गई हूं, जो पत्र पाते समय थी. उस पत्र में क्या प्रेम के कवित्तमय उद्‌गार थे? क्या प्रेम की साहित्यिक विवेचना थी. क्या वियोग व्यथा का करुण क्रंदन था? उस में तो प्रेम का एक शब्द भी न था.

लिखा था—कामिनी, तुम ने आठ दिनों से कोई पत्र नहीं लिखा. क्यों नहीं लिखा? अगर तुम मुझे पत्र न लिखोगी, तो मैं होली की छुट्टियों में घर न आऊंगा, इतना समझ लो. आखिर तुम सारे दिन क्या किया करती हो! मेरे उपन्यासों की अलमारी खोल ली है क्या? आप ने मेरी अलमारी क्यों खोली? समझती होगी, मैं पत्र न लिखूंगी तो बच्चा खूब रोएंगे और हैरान होंगे. यहां इस की परवाह नहीं. नौ बजे रात को सोता हूं, तो आठ बजे उठता हूं. कोई चिंता है, तो यही कि फेल न हो जाऊं. अगर फेल हुआ तो तुम जानोगी.

कितना सरल, भोलेभाले हृदय से निकला हुआ, निष्कपट मानपूर्ण आग्रह और आतंक से पत्र भरा हुआ था, मानो उस का सारा उत्तरदायित्व मेरे ही ऊपर था. ऐसी धमकी क्या अब भी वह मुझे दे सकते हैं? कभी नहीं. ऐसी धमकी वही दे सकता है, जो न मिल सकने की व्यथा को जानता हो, उस का अनुभव करता हो.

पतिदेव अब जानते हैं, इस धमकी का मुझ पर कोई असर न होगा, मैं हंसूंगी और आराम से सोऊंगी, क्योंकि मैं जानती हूं, वह अवश्य आएंगे और उन के लिए ठिकाना ही कहां है? जा ही कहां सकते हैं? तब से उन्होंने मेरे पास कितने पत्र लिखे हैं. दो दिन को भी बाहर जाते हैं, तो जरूर एक पत्र भेजते हैं, और जब दसपांच दिन को जाते हैं, तो नित्य प्रति एक पत्र आता है. पत्रों में प्रेम के चुने हुए शब्द, चुने हुए वाक्य, चुने हुए संबोधन भरे होते हैं. मैं उन्हें पढ़ती हूं और एक ठंडी सांस ले कर रख देती हूं.

हाय! वह हृदय कहां गया? प्रेम के इन निर्जीव भावशून्य कृत्रिम शब्दों में वह अभिन्नता कहां है, वह रस कहां है, वह उन्माद कहां है, वह क्रोध कहां है? वह झुंझलाहट कहां है? उन में मेरा मन कोई वस्तु खोजता है—कोई अज्ञात, अव्यक्त, अलक्षित वस्तु—पर वह नहीं मिलती. उन में सुगंध भरी होती है.

पत्रों के कागज आर्ट पेपर को मात करते हैं; पर उन का यह सारा बनाव संवार किसी गतयौवना नायिका के बनावशृंगार के सदृश ही लगता है. कभीकभी तो मैं पत्रों को खोलती भी नहीं. मैं जानती हूं, उन में क्या लिखा होगा.

उन्हीं दिनों की बात है, मैं ने तीजे का व्रत किया था. मैं ने देवी के सम्मुख सिर झुका कर वंदना की थी—देवी, मैं तुम से केवल एक वरदान मांगती हूं. हम दोनों प्राणियों में कभी विच्छेद न हो, और मुझे कोई अभिलाषा नहीं, मैं संसार की और कोई वस्तु नहीं चाहती.

तब से चार साल हो गए हैं और हम में एक दिन के लिए भी विच्छेद नहीं हुआ. मैं ने तो केवल एक वरदान मांगा था. देवी ने वरदानों का भंडार ही मुझे सौंप दिया.

पर आज मुझे देवी के दर्शन हों, तो मैं कहूं, तुम अपने सारे वरदान ले लो; मैं इन में से एक भी नहीं चाहती. मैं फिर वही दिन देखना चाहती हूं, जब हृदय में प्रेम की अभिलाषा थी. तुम ने सब कुछ दे कर मुझे उस अतुल सुख से वंचित कर दिया, जो अभिलाषा में था. मैं अब की देवी से वह दिन दिखाने की प्रार्थना करूं, जब मैं किसी निर्जन जलतट और सघन वन में अपने प्रियतम को ढूंढ़ती फिरूं. नदी की लहरों से कहूं, मेरे प्रियतम को तुम ने देखा है? वृक्षों से पूछूं, मेरे प्रियतम कहां गए? क्या वह सुख मुझे कभी प्राप्त होगा?

उसी समय मंद, शीतल पवन चलने लगा. मैं खिड़की के बाहर सिर निकाले खड़ी थी. पवन के झोंके से मेरे केश की लटें बिखरने लगीं. मुझे ऐसा आभास हुआ, मानो मेरे प्रियतम वायु के इन उच्छ्वासों में हैं. फिर मैं ने आकाश की ओर देखा.

चांद की किरणें चांदी के जगमगाते तारों की भांति आंखों से आंखमिचौनी सी खेल रही थीं. आंखें बंद करते समय सामने आ जातीं; पर आंखें खोलते ही अदृश्य हो जाती थीं. मुझे उस समय ऐसा आभास हुआ कि मेरे प्रियतम उन्हीं जगमगाते तारों पर बैठे आकाश से उतर रहे हैं. उसी समय किसी ने गाया—

अनोखे से नेही के त्याग,
निराले पीड़ा के संसार!
कहां होते हो अंतर्धान,
लुटा कर के सोने सा प्यार!

‘लुटा कर के सोने सा प्यार’, यह पद मेरे मर्मस्थल को तीर की भांति छेदता हुआ कहां चला गया, नहीं जानती. मेरे रोएं खड़े हो गए. आंखों से आंसुओं की झड़ी लग गई. ऐसा मालूम हुआ, जैसे कोई मेरे प्रियतम को मेरे हृदय से निकाले लिए जाता है. मैं जोर से चिल्ला पड़ी.

उसी समय पतिदेव की नींद टूट गई. वह मेरे पास आ कर बोले—क्या अभी तुम चिल्लाई थीं? अरे! तुम रो रही हो? क्या बात है? कोई स्वप्न तो नहीं देखा?

मैं ने सिसकते हुआ कहा—रोऊं न, तो क्या हंसूं?

स्वामी ने मेरा हाथ पकड़ कर कहा—क्यों, रोने का कोई कारण है, या यों ही रोना चाहती हो?

‘क्या मेरे रोने का कारण तुम नहीं जानते?’

‘मैं तुम्हारे दिल की बात कैसे जान सकता हूं?’

‘तुम ने जानने की चेष्टा कभी की है?’

‘मुझे इस का मानगुमान भी न था कि तुम्हारे रोने का कोई कारण हो सकता है.’

‘तुम ने तो बहुत कुछ पढ़ा है, क्या तुम भी ऐसी बात कह सकते हो?’

स्वामी ने विस्मय में पड़ कर कहा—‘तुम तो पहेलियां बुझवाती हो?’

‘क्यों, क्या तुम कभी नहीं रोते?’

‘मैं क्यों रोने लगा.’

‘तुम्हें अब कोई अभिलाषा नहीं है?’

‘मेरी सब से बड़ी अभिलाषा पूरी हो गई. अब मैं और कुछ नहीं चाहता.’

यह कहते हुए पतिदेव मुसकराए और मुझे गले से लिपटा लेने को बढ़े. उन की यह हृदयहीनता इस समय मुझे बहुत बुरी लगी. मैं ने उन्हें हाथों से पीछे हटा कर कहा—मैं इस स्वांग को प्रेम नहीं समझती. जो कभी रो नहीं सकता वह प्रेम नहीं कर सकता. रुदन और प्रेम, दोनों एक ही स्रोत से निकलते हैं.

उसी समय फिर उसी गाने की ध्वनि सुनाई दी—

अनोखे से नेही के त्याग,
निराले पीड़ा के संसार!
कहां होते हो अंतर्धान,
लुटा कर के सोने सा प्यार!

पतिदेव की वह मुसकराहट लुप्त हो गई. मैं ने उन्हें एक बार कांपते देखा. ऐसा जान पड़ा, उन्हें रोमांच हो रहा है.

सहसा उन का दाहिना हाथ उठ कर उन की छाती तक गया. उन्होंने लंबी सांस ली और उन की आंखों से आंसू की बूंदें निकल कर गालों पर छा गईं. तुरंत मैं ने रोते हुए उन की छाती पर सिर रख दिया और उस परम सुख का अनुभव किया, जिस के लिए कितने दिनों से मेरा हृदय तड़प रहा था. आज फिर मुझे पतिदेव का हृदय सुनाई दिया, आज उन के स्पर्श में फिर स्फूर्ति का ज्ञान हुआ.

अभी तक उस पद के शब्द मेरे हृदय में गूंज रहे थे—

‘कहां होते हो अंतर्धान
लुटा कर के सोने सा प्यार!’

भूत

मुरादाबाद के पंडित सीतानाथ चौबे गत 30 वर्षों से वहां के वकीलों के नेता हैं. उन के पिता उन्हें बाल्यावस्था में ही छोड़ कर परलोक सिधारे थे. घर में कोई संपत्ति न थी. माता ने बड़ेबड़े कष्ट झेल कर उन्हें पाला और पढ़ाया. सब से पहले वह कचहरी में 15 रुपए मासिक पर नौकर हुए. फिर वकालत की परीक्षा दी. पास हो गए. प्रतिभा थी, दो ही चार वर्षों में वकालत चमक उठी.

जब माता का स्वर्गवास हुआ तब पुत्र का शुमार जिले के गणमान्य व्यक्तियों में हो गया था. उन की आमदनी एक हजार रुपए महीने से कम न थी. एक विशाल भवन बनवा लिया था, कुछ जमींदारी ले ली थी, कुछ रुपए बैंक में रख दिए थे, और कुछ लेनदेन में लगा दिए.

इस समृद्धि पर चार पुत्रों का होना उन के भाग्य को आदर्श बनाए हुए था. चारों लड़के भिन्नभिन्न दर्जों में पढ़ते थे. मगर यह कहना कि सारी विभूति चौबेजी के अनवरत परिश्रम का फल थी, उन की पत्नी मंगला देवी के साथ अन्याय करना है. मंगला बड़ी सरल, गृहकार्य में कुशल और पैसे का काम धेले में चलाने वाली स्त्री थी.

जब तक अपना घर न बन गया, उस ने 3 रुपए महीने से अधिक का मकान किराए पर नहीं लिया; और रसोई के लिए मिसराइन तो उस ने अब तक न रखी थी. उसे अगर कोई व्यसन था तो गहनों का; और चौबेजी को भी अगर कोई व्यसन था, तो स्त्री को गहने पहनाने का. वह सच्चे पत्नी परायण मनुष्य थे.

साधारणतया महफिलों में वेश्याओं से हंसीमजाक कर लेना उतना बुरा नहीं समझा जाता पर पंडितजी अपने जीवन में कभी नाचगाने की महफिल में गए ही नहीं. पांच बजे तड़के से ले कर बारह बजे रात तक उन का व्यसन मनोरंजन, पढ़नालिखना अनुशीलन जो कुछ था, कानून था. न उन्हें राजनीति से प्रेम था, न जाति सेवा से. ये सभी काम उन्हें व्यर्थ से जान पड़ते थे.

उन के विचार में अगर कोई काम करने लायक था, तो बस, कचहरी जाना, बहस करना, रुपए जमा करना और भोजन कर के सो रहना. जैसे वेदांती को ब्रह्म के अतिरिक्त जगत मिथ्या जान पड़ता है, वैसे ही चौबेजी को कानून के सिवा सारा संसार मिथ्या प्रतीत होता था. सब माया थी, एक कानून ही सत्य था.

चौबेजी के मुखचंद्र में केवल एक कला की कमी थी. उन के कोई कन्या न थी. पहलौठी कन्या के बाद फिर कन्या हुई ही नहीं और न अब होने की आशा ही थी. स्त्री और पुरुष, दोनों उस कन्या को याद कर के रोया करते थे. लड़कियां बचपन में लड़कों से ज्यादा चोंचले करती हैं.

उन चोंचलों के लिए दोनों प्राणी विकल रहते. मां सोचती, लड़की होती, तो उस के लिए गहने बनवाती, उस के बाल गूंथती. लड़की पैजनियां पहने ठुमकठुमक आंगन में चलती तो कितना आनंद आता! कन्यादान के बिना मोक्ष कैसे होगा? कन्यादान महादान है. जिस ने यह दान न दिया, उस का जन्म ही वृथा गया.

आखिर यह लालसा इतनी प्रबल हुई कि मंगला ने अपनी छोटी बहन को बुला कर कन्या की भांति पालने का निश्चय किया. उस के मांबाप निर्धन थे. राजी हो गए. यह बालिका मंगला की सौतेली मां की कन्या थी. बड़ी सुंदर और बड़ी चंचल थी. नाम था बिन्नी. चौबेजी का घर उस के आने से खिल उठा. दोचार ही दिनों में लड़की अपने मांबाप को भूल गई. उस की उम्र तो केवल चार वर्ष की थी; पर उसे खेलने की अपेक्षा कुछ काम करना अच्छा लगता था.

मंगला रसोई बनाने जाती तो बिन्नी भी उस के पीछेपीछे जाती, उस से आटा गूंधने के लिए झगड़ा करती. तरकारी काटने में उसे बड़ा मजा आता था. जब तक वकील साहब घर पर रहते, तब तक वह उन के साथ दीवानखाने में बैठी रहती है.

कभी किताब उलटती, कभी दवातकलम से खेलती. चौबेजी मुसकरा कर कहते—बेटी, मार खाओगी?

बिन्नी कहती—तुम मार खाओगे, मैं तुम्हारे कान काट लूंगी, जूजू को बुला कर पकड़ा दूंगी.

इस पर दीवानखाने में खूब कहकहे उड़ते.

वकील साहब कभी इतने बाल्यवत्सल न थे! जब बाहर से आते तो कुछ न कुछ सौगात बिन्नी के वास्ते जरूर लाते, और घर में कदम रखते ही पुकारते—बिन्नी बेटी, चलो.

बिन्नी दौड़ती हुई आ कर उन की गोद में बैठ जाती.

मंगला एक दिन बिन्नी को लिए बैठी थी. इतने में पंडितजी आ गए. बिन्नी दौड़ कर उन की गोद में जा बैठी.

पंडितजी ने पूछा—तू किस की बेटी है?

बिन्नी—न बताऊंगी.

मंगला—कह दे बेटा, जीजी की बेटी हूं.

पंडित—तू मेरी बेटी है, बिन्नी, कि इन की?

बिन्नी—न बताऊंगी.

पंडित—अच्छा, हम लोग आंखें बंद किए बैठे हैं; बिन्नी जिस की बेटी होगी, उस की गोद में बैठ जाएगी.

बिन्नी उठी और फिर चौबेजी की गोद में बैठ गई.

पंडित—मेरी बेटी है, मेरी बेटी है. (स्त्री से) अब न कहना कि मेरी बेटी है.

मंगला—अच्छा, जाओ बिन्नी, अब तुम्हें मिठाई न दूंगी, गुड़िया भी न मंगा दूंगी!

बिन्नी—भैयाजी मंगवा देंगे, तुम्हें न दूंगी.

वकील साहब ने हंस कर बिन्नी को छाती से लगा लिया और गोद में लिए हुए बाहर चले गए. वह अपने इष्टमित्रों को भी इस बालक्रीड़ा का रसास्वादन कराना चाहते थे.

आज से जो बिन्नी से पूछता कि तू किस की बेटी है, तो बिन्नी चट कह देती—भैया की.

एक बार बिन्नी का बाप आ कर उसे अपने साथ ले गया. बिन्नी ने रोरो कर दुनिया सिर पर उठा ली. इधर चौबेजी को भी दिन काटना कठिन हो गया. एक महीना भी न गुजरने पाया था कि वह फिर ससुराल गए और बिन्नी को लिवा लाए. बिन्नी अपनी माता और पिता को भूल गई. वह चौबेजी को अपना बाप और मंगला को अपनी मां समझने लगी. जिन्होंने उसे जन्म दिया था, वे अब गैर हो गए.

3

कई साल गुजर गए. वकील साहब के बेटों के विवाह हुए. उन में से दो अपने बालबच्चों को ले कर अन्य जिलों में वकालत करने चले गए. दो कालेज में पढ़ते थे. बिन्नी भी कली से फूल हुई. ऐसी रूपगुण शीलवाली बालिका बिरादरी में और न थी—पढ़नेलिखने में चतुर, घर के कामधंधों में कुशल, बूटेकसीदे और सीनेपिरोने में दक्ष, पाककला में निपुण, मधुरभाषिणी, लज्जाशीला, अनुपम रूप की राशि. अंधेरे घर में उस के सौंदर्य की दिव्य ज्योति से उजाला होता था.

उषा की लालिमा में, ज्योत्स्ना की मनोहर छटा में, खिले हुए गुलाब के ऊपर सूर्य की किरणों से चमकते हुए तुषार बिंदु में भी वह प्राणप्रद सुषमा और वह शोभा न थी, श्वेत हेममुकुटधारी पर्वत में भी वह शीतलता न थी, जो बिन्नी अर्थात विंध्येश्वरी के विशाल नेत्रों में थी.

चौबेजी ने बिन्नी के लिए सुयोग्य वर खोजना शुरू किया. लड़कों की शादियों में दिल का अरमान निकाल चुके थे. अब कन्या के विवाह में हौसले पूरे करना चाहते थे. धन लुटा कर कीर्ति पा चुके थे, अब दानदहेज में नाम कमाने की लालसा थी. बेटे का विवाह कर लेना आसान है पर कन्या के विवाह में आबरू निबाह ले जाना कठिन है, नौका पर सभी यात्रा करते हैं, जो तैर कर नदी पार करे, वही प्रशंसा का अधिकारी है.

धन की कमी न थी. अच्छा घर और सुयोग्य वर मिल गया. जन्मपत्र मिल गए, बनावत बन गया. फलदान और तिलक की रस्में भी अदा कर दी गईं. पर हाय रे दुर्दैव! कहां तो विवाह की तैयारी हो रही थी, द्वार पर दरजी, सुनार, हलवाई सब अपनाअपना काम कर रहे थे, कहां निर्दय विधाता ने और ही लीला रच दी! विवाह के एक सप्ताह पहले मंगला अनायास बीमार पड़ी, तीन ही दिन में अपने सारे अरमान लिए हुए परलोक सिधार गई.

संध्या हो गई थी. मंगला चारपाई पर पड़ी हुई थी. बेटे, बहुएं पोतेपोतियां सब चारपाई के चारों ओर खड़े थे. बिन्नी पैंताने बैठी मंगला के पैर दबा रही थी. मृत्यु के समय की भयंकर निस्तब्धता छाई हुई थी. कोई किसी से न बोलता था; दिल में सब समझ रहे थे, क्या होने वाला है. केवल चौबेजी वहां न थे.

सहसा मंगला ने इधरउधर इच्छा पूर्ण दृष्टि से देख कर कहा—जरा उन्हें बुला दो;

कहां हैं?

पंडितजी अपने कमरे में बैठे रो रहे थे. संदेश पाते ही आंसू पोंछते हुए घर में आए और बड़े धैर्य के साथ मंगला के सामने हो गए. डर रहे थे कि मेरी आंखों से आंसू की एक बूंद भी निकली, तो घर में हाहाकार मच जाएगा.

मंगला ने कहा—एक बात पूछती हूं, बुरा न मानना, बिन्नी तुम्हारी कौन है?

पंडित—बिन्नी कौन है? मेरी बेटी है और कौन?

मंगला—हां, मैं तुम्हारे मुंह से यही सुनना चाहती थी. उसे सदा अपनी बेटी समझते रहना. उस के विवाह के लिए मैं ने जोजो तैयारियां की थीं, उन में कुछ काटछांट मत करना.

पंडित—इस की चिंता न करो. ईश्वर ने चाहा, तो उस से कुछ ज्यादा धूमधाम के साथ विवाह होगा.

मंगला—उसे हमेशा बुलाते रहना, तीजत्योहार में कभी मत भूलना.

पंडित—इन बातों की मुझे याद दिलाने की जरूरत नहीं.

मंगला ने कुछ सोच कर फिर कहा—इसी साल विवाह कर देना.

पंडित—इस साल कैसे होगा?

मंगला—यह फागुन का महीना है. जेठ तक लगन है.

पंडित—हो सकेगा तो इसी साल कर दूंगा.

मंगला—हो सकने की बात नहीं, जरूर कर देना.

पंडित—कर दूंगा.

इस के बाद गोदान की तैयारी होने लगी.

4

बुढ़ापे में पत्नी का मरना बरसात में घर का गिरना है. फिर उस के बनने की आशा नहीं होती.

मंगला की मृत्यु से पंडितजी का जीवन अनियमित और विशृंखल सा हो गया. लोगों से मिलनाजुलना छूट गया. कईकई दिन कचहरी ही न जाते. जाते भी, तो बड़े आग्रह से. भोजन से अरुचि हो गई.

विंध्येश्वरी उन की दशा देखदेख कर दिल में कुढ़ती और यथासाध्य उन का दिल बहलाने की चेष्टा किया करती थी. वह उन्हें पुराणों की कथाएं पढ़ कर सुनाती, उन के लिए तरहतरह की भोजन सामग्री पकाती और उन्हें आग्रह अनुरोध के साथ खिलाती थी.

जब तक वह न खा लेते, आप कुछ न खाती थी. गरमी के दिन थे ही. रात को बड़ी देर तक पैताने बैठी पंखा झला करती और जब तक वह न सो जाते, तब तक आप भी सोने न जाती. वह जरा भी सिरदर्द की शिकायत करते, तो तुरंत उन के सिर में तेल डालती. यहां तक कि रात को जब उन्हें प्यास लगती, तब खुद दौड़ कर आती उन्हें पानी पिलाती. धीरेधीरे चौबेजी के हृदय में मंगला केवल एक सुख की स्मृति रह गई.

एक दिन चौबेजी ने बिन्नी को मंगला के सब गहने दे दिए. मंगला का यह अंतिम आदेश था. बिन्नी फूली न समाई. उस ने उस दिन खूब बनावसिंगार किया. जब संध्या के

समय पंडितजी कचहरी से आए, तो वह गहनों से लदी हुई उन के सामने कुछ लजाती और मुसकराती हुई आ कर खड़ी हो गई.

पंडितजी ने सतृष्ण नेत्रों से देखा. विंध्येश्वरी के प्रति अब उन के मन में एक नया भाव अंकुरित हो रहा था. मंगला जब तक जीवित थी, वह उन से पितापुत्री के भाव को सजग और पुष्ट कराती रहती थी. अब मंगला न थी. अतएव वह भाव दिनदिन शिथिल होता जाता था. मंगला के सामने बिन्नी एक बालिका थी. मंगला की अनुपस्थिति में वह एक रूपवती युवती थी.

लेकिन सरलहृदया बिन्नी को इस की रत्ती भर भी खबर न थी कि भैया के भावों में क्या परिवर्तन हो रहा है. उस के लिए वह वही पिता के तुल्य भैया थे. वह पुरुषों के स्वभाव से अनभिज्ञ थी. नारी चरित्र में अवस्था के साथ मातृत्व का भाव दृढ़ होता जाता है. यहां तक कि एक समय ऐसा आता है, जब नारी की दृष्टि में युवक मात्र पुत्र तुल्य हो जाते हैं. उस के मन में विषय वासना का लेश भी नहीं रह जाता.

किंतु पुरुषों में यह अवस्था कभी नहीं आती! उन की कामेंद्रियां क्रियाहीन भले ही हो जाएं, पर विषयवासना संभवतः और भी बलवती हो जाती है. पुरुष वासनाओं से कभी मुक्त नहीं हो पाता, बल्कि ज्योंज्यों अवस्था ढलती है त्योंत्यों गीष्मऋतु के अंतिमकाल की भांति उस की वासना की गरमी भी प्रचंड होती जाती है. वह तृप्ति के लिए नीच साधनों का सहारा लेने को भी प्रस्तुत हो जाता है.

जवानी में मनुष्य इतना नहीं गिरता. उस के चरित्र में गर्व की मात्रा अधिक रहती है, जो नीच साधनों से घृणा करती है. वह किसी के घर में घुसने के लिए जबरदस्ती कर सकता है, किंतु परनाले के रास्ते नहीं जा सकता.

पंडित ने बिन्नी को सतृष्ण नेत्रों से देखा और फिर अपनी इस उच्छृंखलता पर लज्जित हो कर आंखें नीची कर लीं! बिन्नी इस का कुछ मतलब न समझ सकी.

पंडितजी बोले—तुम्हें देख कर मुझे मंगला की उस समय की याद आ रही है—जब वह विवाह के समय यहां आई थी. बिलकुल ऐसी सूरत थी. यही गोरा रंग, यही प्रसन्न मुख, यही कोमल गात, ये ही लजीली आंखें. वह चित्र अभी तक मेरे हृदय पट पर खिंचा हुआ है, कभी नहीं मिट सकता. ईश्वर ने तुम्हारे रूप में मेरी मंगला मुझे फिर दे दी.

बिन्नी—आप के लिए क्या जलपान लाऊं?

पंडित—ले आना, अभी बैठो, मैं बहुत दुखी हूं. तुम ने मेरे शोक को भुला दिया है. वास्तव में तुम ने मुझे जिला लिया, नहीं तो मुझे आशा न थी कि मंगला के पीछे मैं जीवित रहूंगा. तुम ने प्राण दान दिया. नहीं जानता तुम्हारे चले जाने पर मेरी क्या दशा होगी.

बिन्नी—कहां चले जाने के बाद? मैं तो कहीं नहीं जा रही हूं.

पंडित—क्यों तुम्हारे विवाह की तिथि आ रही है. चली ही जाओगी.

बिन्नी (सकुचाती हुई)—ऐसी जल्दी क्या है?

पंडित—जल्दी क्यों नहीं. जमाना हंसेगा.

बिन्नी—हंसने दीजिए. मैं यहीं आप की सेवा करती रहूंगी.

पंडित—नहीं बिन्नी, मेरे लिए तुम क्यों हलकान होगी. मैं अभागा हूं, जब तक जिंदगी है, जिऊंगा; चाहे रो कर जिऊं, चाहे हंस कर. हंसी मेरे भाग्य से उठ गई. तुम ने आने दिनों

संभाल लिया, यही क्या कम एहसान किया. मैं यह जानता हूं कि तुम्हारे जाने के बाद कोई मेरी खबर लेने वाला नहीं रहेगा, यह घर तहसनहस हो जाएगा और मुझे घर छोड़ कर भागना पड़ेगा. पर क्या किया जाए, लाचारी है. तुम्हारे बिना अब मैं यहां क्षणभर भी नहीं रह सकता. मंगला की खाली जगह तो तुम ने पूरी की, अब तुम्हारा स्थान कौन पूरा करेगा.

बिन्नी—क्या इस साल रुक नहीं सकता. मैं इस दशा में आप को छोड़ कर न जाऊंगी.

पंडित—अपने बस की बात तो नहीं? वे लोग आग्रह करेंगे, तो मजबूर हो कर करना ही पड़ेगा.

बिन्नी—बहुत जल्दी मचाएं तो आप कह दीजिएगा, अब नहीं करेंगे. उन लोगों के जी में जो आए, करें. यहां कोई उन का दबैल बैठा हुआ है?

पंडित—वे लोग अभी से आग्रह कर रहे हैं.

बिन्नी—आप फटकार क्यों नहीं देते?

पंडित—करना तो है ही फिर विलंब क्यों करूं? यह दुख और वियोग तो एक दिन होना ही है. अपनी विपत्ति का भार तुम्हारे सिर क्यों रखूं?

बिन्नी—दुखसुख में काम न आऊंगी, तो और किस दिन काम आऊंगी?

5

पंडितजी के मन में कई दिनों से घोर संग्राम होता रहा. वह अब बिन्नी को पिता की दृष्टि से न देख सकते थे. बिन्नी अब मंगला की बहन और उन की साली थी. जमाना हंसेगा, तो हंसे; जिंदगी तो आनंद से गुजरेगी. उन की भावनाएं कभी इतनी उल्लासमयी न थीं. उन्हें अपने अंगों में फिर जवानी की स्फूर्ति का अनुभव हो रहा था!

वह सोचते, बिन्नी को मैं अपनी पुत्री समझता था; पर वह मेरी पुत्री है तो नहीं. इस तरह समझने से क्या होता है? कौन जाने, ईश्वर को यही मंजूर हो; नहीं तो बिन्नी यहां आती ही क्यों? उस ने इसी बहाने से यह संयोग निश्चित का दिया होगा. उस की लीला तो अपरंपार है.

पंडितजी ने वर के पिता को सूचना दे दी कि कुछ विशेष कारणों से इस साल विवाह नहीं हो सकता.

विंध्येश्वरी को अभी तक कुछ खबर न थी कि मेरे लिए क्याक्या षड्यंत्र रचे जा रहे हैं. वह खुश थी कि मैं भैयाजी की सेवा कर रही हूं और भैयाजी तुझ से प्रसन्न हैं! बहन का इन्हें बड़ा दुख है. मैं न रहूंगी, तो यह कहीं चले जाएंगे—कौन जाने, साधु संन्यासी न हो जाएं! घर में कैसे मन लगेगा.

वह पंडितजी का मन बहलाने का निरंतर प्रयत्न करती रहती थी! उन्हें कभी मनमारे न बैठने देती. पंडितजी का मन अब कचहरी में न लगता था. घंटे दो घंटे बैठ कर चले आते थे. युवकों के प्रेम में विफलता होती है और वृद्धों के प्रेम में श्रद्धा. वे अपने यौवन की कमी को खुशामद से, मीठी बातों से और हाजिरजवाबी से पूर्ण करना चाहते हैं.

मंगला को मरे अभी तीन ही महीने गुजरे थे कि चौबेजी ससुराल पहुंचे. सास ने मुंहमांगी मुराद पाई. उस के दो पुत्र थे. घर में कुछ पूंजी न थी. उन के पालन और शिक्षा के लिए कोई ठिकाना नजर न आता था. मंगला मर ही चुकी थी. लड़की का ज्योंही विवाह हो

जाएगा, वह अपने घर की हो रहेगी. फिर चौबे से नाता ही टूट जाएगा. वह इसी चिंता में पड़ी हुई थी कि चौबेजी पहुंचे, मानो देवता स्वयं वरदान देने आए हों.

जब चौबेजी भोजन कर के लेटे, तो सास ने कहा—भैया, कहीं बातचीत हुई कि नहीं?

पंडित—अम्मां, अब मेरे विवाह की बातचीत क्या होगी?

सास—क्यों भैया, अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है?

पंडित—करना भी चाहूं तो बदनामी के डर से नहीं कर सकता. फिर मुझे पूछता ही कौन है?

सास—पूछने को हजारों हैं. दूर क्यों जाओ, अपने घर ही में लड़की बैठी है. सुना है, तुम ने मंगला के सब गहने बिन्नी को दे दिए हैं. कहीं और विवाह हुआ, तो ये कई हजार की चीजें तुम्हारे हाथों से निकल जाएंगी. तुम से अच्छा घर मैं कहां पाऊंगी. तुम उसे अंगीकार कर लो, तो मैं तर जाऊं.

अंधा क्या मांगे, दो आंखें! चौबेजी ने मानो विवश हो कर सास की प्रार्थना स्वीकार कर ली.

6

बिन्नी अपने गांव के कच्चे मकान में अपनी मां के पास बैठी हुई है. अब की चौबेजी ने उस की सेवा के लिए एक लौंडी भी साथ कर दी है. विंध्येश्वरी के दोनों भाई विस्मित होहो कर उस के आभूषणों को देख रहे हैं. गांव की और कई स्त्रियां उसे देखने आई हुई हैं और उस के रूपलावण्य का विकास देख कर चकित हो रही हैं. यह वही बिन्नी है, जो यहां मोटी फरिया पहने खेला करती थी! रंगरूप कैसा निखर आया है! सुख की देह है न!

जब भीड़ कम हुई, एकांत हुआ, तो माता ने पूछा—तेरे भैयाजी तो अच्छी तरह हैं न बेटी! यहां आए थे तो बहुत दुखी थे. मंगला का शोक उन्हें खाए जाता है. संसार में ऐसे मर्द भी होते हैं, जो स्त्री के लिए प्राण दे देते हैं. नहीं तो यहां स्त्री मरी और चट दूसरा ब्याह रचाया गया. मानो मनाते रहते हैं कि यह मरे तो नईनवेली बहू घर लाएं!

विंध्ये.—उन्हें याद कर के रोया करते हैं. चली आई हूं, न जाने कैसे होंगे!

माता—मुझे तो डर लगता है कि तेरा ब्याह हो जाने पर कहीं घबरा कर साधूफकीर न हो जाएं.

विंध्ये.—मुझे भी तो यही डर लगता है. इसी से तो मैं ने कह दिया कि अभी जल्दी क्या है.

माता—जितने ही दिन उन की सेवा करोगी, उतना ही उन का स्नेह बढ़ेगा; और तुम्हारे जाने से उन्हें उतना ही दुख भी अधिक होगा. बेटी, सच तो यह है कि वह तुम्हीं को देख कर जीते हैं. इधर तुम्हारी डोली उठी और उधर उन का घर सत्यानाश हुआ. मैं तुम्हारी जगह होती, तो उन्हीं से ब्याह कर लेती.

विंध्ये.—ऐ हटो अम्मां, गाली देती हो? उन्होंने मुझे बेटी कर के पाला है. मैं भी उन्हें अपना पिता…

माता—चुप रह पगली! कहने से क्या होता है?

विंध्ये.—अरे सोच तो अम्मां, कितनी बेढंगी बात है!

माता—मुझे तो इस में कोई बेढंगापन नहीं देख पड़ता.

विंध्ये.—क्या कहती हो अम्मां, उन से मेरा...मैं तो लाज के मारे मर जाऊं, उन के सामने ताक न सकूं, वह भी कभी न मानेंगे. मानने की बात भी हो कोई.

माता—उन का जिम्मा मैं लेती हूं. मैं उन्हें राजी कर लूंगी. तू राजी हो जा. याद रख, यह कोई हंसीखुशी का ब्याह नहीं है, उन की प्राणरक्षा की बात है, जिस के सिवा संसार में हमारा और कोई नहीं. फिर अभी उन की कुछ ऐसी उम्र भी तो नहीं है. पचास से दो ही चार साल ऊपर होंगे. उन्होंने एक ज्योतिषी से पूछा भी था. उस ने उन की कुंडली देख कर बताया है कि आप की जिंदगी कम से कप 70 वर्ष की है. देखनेसुनने में भी वह सौ दो सौ में एक आदमी हैं.

बातचीत में चतुर माता ने कुछ ऐसा शब्द व्यूह रचा कि सरला बालिका उस में से निकल न सकी. माता जानती थी कि प्रलोभन का जादू इस पर न चलेगा. धन का, आभूषणों का, कुल सम्मान का, सुखमय जीवन का उस ने जिक्र तक न किया.

उस ने केवल चौबेजी की दयनीय दशा पर जोर दिया. अंत में विंध्येश्वरी ने कहा—अम्मां, मैं जानती हूं कि मेरे न रहने से उन को बड़ा दुख होगा; यह भी जानती हूं कि मेरे जीवन में सुख नहीं लिखा है. अच्छा, उन के हित के लिए मैं अपना जीवन बलिदान कर दूंगी. ईश्वर की यही इच्छा है, तो यही सही.

7

चौबेजी के घर में मंगल गान हो रहा था. विंध्येश्वरी आज वधू बन कर इस घर में आई है. कई वर्ष पहले वह चौबेजी की पुत्री बन कर आई थी! उस ने कभी स्वप्न में भी न सोचा था कि मैं एक दिन इस घर की स्वामिनी बनूंगी.

चौबेजी की सजधज आज देखने योग्य है. तनजेब का रंगीन कुरता, कतरी हुई और संवारी हुई मूंछें, खिजाब से चमकते हुए बाल, हंसता हुआ चेहरा, चढ़ी आंखें—यौवन का पूरा स्वांग था!

रात बीत चुकी थी. विंध्येश्वरी आभूषणों से लदी हुई, भारी जोड़े पहने, फर्श पर सिर झुकाए बैठी. उसे कोई उत्कंठा न थी, भय न था, केवल यह संकोच था कि मैं उन के सामने कैसे मुंह खोलूंगी? उन की गोद में खेली हूं; उन के कंधों पर बैठी हूं, उन की पीठ पर सवार हुई हूं, कैसे उन्हें मुंह दिखाऊंगी, मगर वे पिछली बातें क्यों सोचूं. ईश्वर उन्हें प्रसन्न रखें. जिस के लिए मैं ने पुत्री से पत्नी बनना स्वीकार किया, वह पूर्ण हो. उन का जीवन आनंद से व्यतीत हो.

इतने में चौबेजी आए. विंध्येश्वरी उठ खड़ी हुई. उसे इतनी लज्जा आई कि जी चाहा कहीं भाग जाए. खिड़की से नीचे कूद पड़े.

चौबेजी ने उस का हाथ पकड़ लिया और बोले—बिन्नी, मुझ से डरती हो?

बिन्नी कुछ न बोली. मूर्ति की तरह वहीं खड़ी रही. एक क्षण में चौबेजी ने उसे बिठा दिया. वह बैठ गई. उस का गला भरभर आता था. भाग्य की यह निर्दय लीला, यह क्रूर क्रीड़ा उस के लिए असह्य हो रही थी.

पंडितजी ने पूछा—बिन्नी, बोलती क्यों नहीं? क्या मुझ से नाराज हो?

विंध्येश्वरी ने अपने कान बंद कर लिए. यही परिचित आवाज वह कितने दिनों से सुनती चली आती थी. आज वह व्यंग्य से भी तीव्र और उपहास से भी कटु प्रतीत होती थी.

सहसा पंडितजी चौंक पड़े, आंखें फैल गईं और दोनों हाथ मेढक के पैरों की भांति सिकुड़ गए. वह दो कदम पीछे हट गए. खिड़की से मंगला अंदर झांक रही थी. छाया नहीं, मंगला थी—मंगला—सदेह, साकार, सजीव.

चौबेजी कांपती हुई टूटीफूटी आवाज से बोले—बिन्नी देखो, वह क्या है?

बिन्नी ने घबरा कर खिड़की की ओर देखा. कुछ न था. बोली—क्या है? मुझे तो कुछ नहीं दिखाई देता.

चौबेजी—अब गायब हो गई; लेकिन ईश्वर जानता है, मंगला थी.

बिन्नी—बहन?

चौबेजी—हांहां वही. खिड़की से अंदर झांक रही थी. मेरे तो रोएं खड़े हो गए.

विंध्येश्वरी कांपती हुई बोली—मैं यहां नहीं रहूंगी.

चौबे—नहीं, नहीं बिन्नी, कोई डर नहीं है, मुझे धोखा हुआ होगा. बात यह है कि वह घर में रहती थी, यहीं सोती थी, इसी से कदाचित मेरी भावना ने उस की मूर्ति ला कर खड़ी कर दी. कोई बात नहीं है. आज का दिन कितना मंगलमय है कि मेरी बिन्नी यथार्थ में मेरी ही हो गई…

यह कहतेकहते चौबेजी फिर चौंके, फिर वही मूर्ति खिड़की से झांक रही थी—मूर्ति नहीं, सदेह, सजीव, साकार मंगला! अब की उस की आंखों में क्रोध न था, तिरस्कार न था, उन में हास्य भरा हुआ था, मानो वह इस दृश्य पर हंस रही है—मानो उस के सामने कोई अभिनय हो रहा है.

चौबेजी ने कांपते हुए कहा—बिन्नी, फिर वही बात हुई! वह देखो, मंगला खड़ी है.

विंध्येश्वरी चीख कर उन के गले से चिपट गई!

चौबेजी ने महावीर का नाम जपते हुए कहा—मैं किवाड़ बंद किए देता हूं.

बिन्नी—मैं इस घर में नहीं रहूंगी. (रो कर) भैयाजी, तुम ने बहन के अंतिम आदेश को नहीं माना, इसी से उन की आत्मा दुखी हो रही है. मुझे तो किसी अमंगल की आशंका हो रही है.

चौबेजी ने उठ कर खिड़की के द्वार बंद कर दिए और कहा—मैं कल से दुर्गापाठ कराऊंगा. आज तक कभी ऐसी शंका न हुई थी. तुम से क्या कहूं, मालूम होता है… होगा; उस बात को जाने दो. यहां बड़ी गरमी पड़ रही है. अभी पानी गिरने को दो महीने से कम नहीं हैं. हम लोग मसूरी क्यों न चलें.

विंध्ये.—मेरा तो कहीं जाने का जी नहीं चाहता. कल से दुर्गापाठ जरूर कराना. मुझे अब इस कमरे में नींद न आएगी.

पंडित—ग्रंथों में तो यही देखा है कि मरने के बाद केवल सूक्ष्म शरीर रह जाता है. फिर समझ में नहीं आता, यह स्वरूप क्यों कर दिखाई दे रहा है. मैं सच कहता हूं, बिन्नी, अगर तुम ने मुझ पर यह दया न की होती; तो मैं कहीं का न रहता. शायद इस वक्त मैं बद्रीनाथ के पहाड़ों पर सिर टकराता होता, या कौन जाने विष खा कर प्राणांत कर चुका होता!

विंध्ये.—मसूरी में किसी होटल में ठहरना पड़ेगा!

पंडित—नहीं, मकान भी मिलते हैं. मैं अपने एक मित्र को लिखे देता हूं, वह कोई मकान ठीक कर रखेंगे वहां...

बात पूरी न होने पाई थी कि न जाने कहां से—जैसे आकाशवाणी हो—आवाज आई—बिन्नी तुम्हारी पुत्री है!

चौबेजी ने दोनों कान बंद कर लिए. भय से थरथर कांपते हुए बोले—बिन्नी, यहां से चलो. न जाने कहां से आवाजें आ रही हैं.

'बिन्नी तुम्हारी पुत्री है!' यह ध्वनि सहस्रों कानों में पंडितजी को सुनाई पड़ने लगी, मानो उस कमरे की एकएक वस्तु से यही सदा आ रही हैं.

बिन्नी ने रो कर पूछा—कैसी आवाज थी?

पंडित—क्या बताऊं, कहते लज्जा आती है.

बिन्नी—जरूर बहनजी की आत्मा है. बहन, मुझ पर दया करो, मैं सर्वथा निर्दोष हूं.

पंडित—फिर वही आवाज आ रही है. हाय ईश्वर! कहां जाऊं? मेरे तो रोमरोम में वे ही शब्द गूंज रहे हैं. बिन्नी, बुरा किया. मंगला सती थी, उस के आदेश की उपेक्षा कर के मैं ने अपने हक में जहर बोया. कहां जाऊं, क्या करूं?

यह कह कर पंडितजी ने अपने कमरे के किवाड़ खोल दिए और बेतहाशा भागे. अपने मरदाने कमरे में पहुंच कर वह गिर पड़े. मूर्च्छा आ गई. विंध्येश्वरी भी दौड़ी, पर चौखट से बाहर निकलते ही गिर पड़ी!

कप्तान साहब

जगत सिंह को स्कूल जाना कुनैन खाने या मछली का तेल पीने से कम अप्रिय न था. वह सैलानी, आवारा, घुमक्कड़ युवक था. कभी अमरूद के बागों की ओर निकल जाता और अमरूदों के साथ माली की गालियां बड़े शौक से खाता. कभी दरिया की सैर करता और मल्लाहों की डोंगियों में बैठ कर उस पार के देहातों में निकल जाता.

गालियां खाने में उसे मजा आता था. गालियां खाने का कोई अवसर वह हाथ से न जाने देता. सवार के घोड़े के पीछे ताली बजाना, एक्कों को पीछे से पकड़ कर अपनी ओर खींचना, बूढ़ों की चाल की नकल करना उस के मनोरंजन के विषय थे. आलसी काम तो नहीं करता; पर दुर्व्यसनों का दास होता है, और दुर्व्यसन धन के बिना पूरे नहीं होते.

जगतसिंह को जब अवसर मिलता, घर से रुपए उड़ा ले जाता. नकद न मिले, तो बरतन और कपड़े उठा ले जाने में भी उसे संकोच न होता था. घर में शीशियां और बोतलें थीं, वे सब उस ने एकएक कर के गुदड़ी बाजार पहुंचा दीं. पुराने दिनों की कितनी चीजें घर में पड़ी थीं, उस के मारे एक भी न बची.

इस कला में ऐसा दक्ष और निपुण था कि उस की चतुराई और पटुता पर आश्चर्य होता था. एक बार बाहर ही बाहर, केवल कार्निसों के सहारे अपने दोमंजिला मकान की छत पर चढ़ गया और ऊपर ही से पीतल की एक बड़ी थाली ले कर उतर आया. घर वालों को आहट तक न मिली.

उस के पिता ठाकुर भक्तसिंह अपने कस्बे के डाकखाने के मुंशी थे. अफसरों ने उन्हें शहर का डाकखाना बड़ी दौड़धूप करने पर दिया था; किंतु भक्तसिंह जिन इरादों से यहां आए थे, उन में से एक भी पूरा न हुआ. उलटी हानि यह हुई कि देहातों में तो भाजीसाग, उपलेईंधन मुफ्त मिल जाते थे, वे सब यहां बंद हो गए.

यहां सब से पुराना घरांव था. न किसी को दबा सकते थे, न सता सकते थे. इस दुरवस्था में जगतसिंह की हथलपकियां बहुत अखरतीं. उन्होंने कितनी ही बार उसे बड़ी निर्दयता से पीटा. जगतसिंह भीमकाय होने पर भी चुपके से मार खा लिया करता था. अगर वह अपने पिता के हाथ पकड़ लेता, तो वह हिल भी न सकते; पर जगतसिंह इतना सीनाजोर न था. हां, मारपीट, घुड़कीधमकी किसी का भी उस पर असर न होता था.

जगतसिंह ज्यों ही घर में कदम रखता; चारों ओर से कांवकांव मच जाती, मां दुरदुर कर के दौड़ती, बहनें गालियां देने लगतीं; मानो घर में कोई सांड़ घुस आया हो. बेचारा उलटे पांव भागता. कभीकभी दोदो, तीनतीन दिन भूखा रह जाता. घर वाले उस की सूरत

से जलते. इन तिरस्कारों ने उसे निर्लज्ज बना दिया था. कष्टों के ज्ञान से वह निर्द्वंद्व सा हो गया था. जहां नींद आ जाती, वहीं पड़ा रहता; जो कुछ मिल जाता वही खा लेता.

ज्योंज्यों घर वालों को उस की चोर कला के गुप्त साधनों का ज्ञान होता जाता था, वे उस से चौंकन्ने होते जाते थे. यहां तक कि एक बार पूरे महीने भर तक उस की दाल न गली. चरस वाले के कई रुपए ऊपर चढ़ गए. गांजे वाले ने धुआंधार तकाजे करने शुरू किए. हलवाई कड़वी बातें सुनाने लगा.

बेचारे जगत को निकलना मुश्किल हो गया. रातदिन ताकझांक में रहता; पर घात न मिलती थी. आखिर एक दिन बिल्ली के भागों छींका टूटा. भक्तसिंह दोपहर को डाकखाने से चले, तो एक बीमा रजिस्ट्री जेब में डाल ली. कौन जाने कोई हरकारा या डाकिया शरारत कर जाए; किंतु घर आए तो लिफाफे को अचकन की जेब से निकालने की सुधि न रही.

जगतसिंह तो ताक लगाए हुए था ही. पैसे के लोभ से जेब टटोली, तो लिफाफा मिल गया. उस पर कई आने के टिकट लगे थे. वह कई बार टिकट चुरा कर आधे दामों पर बेच चुका था. चट लिफाफा उड़ा दिया. यदि उसे मालूम होता कि उस में नोट हैं, तो कदाचित वह न छूता; लेकिन जब उस ने लिफाफा फाड़ डाला और उस में से नोट निकल पड़े तो वह बड़े संकट में पड़ गया.

वह फटा हुआ लिफाफा गला फाड़फाड़ कर उस के दुष्कृत्य को धिक्कारने लगा. उस की दशा उस शिकारी की सी हो गई, जो चिड़ियों का शिकार करने जाए और अनजाने में किसी आदमी पर निशाना मार दे. उस के मन में पश्चात्ताप था, लज्जा थी, दुख था, पर उस में भूल का दंड सहने की शक्ति न थी. उस ने नोट लिफाफे में रख दिए और बाहर चला गया.

गरमी के दिन थे. दोपहर को सारा घर सो रहा था; पर जगत की आंखों में नींद न थी. आज उस की बुरी तरह कुंदी होगी—इस में संदेह न था. उस का घर पर रहना ठीक नहीं, दसपांच दिन के लिए उसे कहीं खिसक जाना चाहिए. तब तक लोगों का क्रोध शांत हो जाता. लेकिन कहीं दूर गए बिना काम न चलेगा.

बस्ती में वह कई दिन तक अज्ञातवास नहीं कर सकता. कोई न कोई जरूर ही उस का पता बता देगा और वह पकड़ लिया जाएगा. दूर जाने के लिए कुछ न कुछ खर्च तो पास होना चाहिए. क्यों न वह लिफाफे में से एक नोट निकाल ले? यह तो मालूम ही हो जाएगा कि उसी ने लिफाफा फाड़ा है, फिर एक नोट निकाल लेने में क्या हानि है? दादा के पास रुपए तो हैं ही, झक मार कर दे देंगे.

यह सोच कर उस ने दस रुपए का एक नोट उड़ा लिया; मगर उसी वक्त उस के मन में एक नई कल्पना का प्रादुर्भाव हुआ. अगर ये सब रुपए ले कर किसी दूसरे शहर में कोई दुकान खोल ले, तो बड़ा मजा हो. फिर एकएक पैसे के लिए उसे क्यों किसी की चोरी करनी पड़े! कुछ दिनों में वह बहुत सा रुपया जमा कर के घर आएगा; तो लोग कितने चकित हो जाएंगे!

उस ने लिफाफे को फिर निकाला. उस में कुल 200 रु. के नोट थे. दो सौ में दूध की दुकान खूब चल सकती है. आखिर मुरारी की दुकान में दोचार कढ़ाव और दोचार पीतल के

थालों के सिवा और क्या है? लेकिन कितने ठाट से रहता है! रुपयों की चरस उड़ा देता है. एकएक दांव पर दसदस रुपए रख देता है, नफा न होता, तो वह ठाट कहां से निभता? इस आनंद कल्पना में वह इतना मग्न हुआ कि उस का मन उस के काबू से बाहर हो गया, जैसे प्रवाह में किसी के पांव उखड़ जाएं और वह लहरों में बह जाए. उसी दिन शाम को वह बंबई चल दिया.

दूसरे ही दिन मुंशी भक्तसिंह पर गबन का मुकदमा दायर हो गया.

2

बंबई के किले के मैदान में बैंड बज रहा था और राजपूत रेजिमेंट के सजीले सुंदर जवान कवायद कर रहे थे, जिस प्रकार हवा बादलों को नएनए रूप में बनाती और बिगाड़ती है, उसी भांति सेना का नायक सैनिकों को नएनए रूप में बनाबिगाड़ रहा था.

जब कवायद खतम हो गई, तो एक छरहरे डील का युवक नायक के सामने आ कर खड़ा हो गया. नायक ने पूछा—क्या नाम है? सैनिक ने फौजी सलाम कर के कहा—जगतसिंह?

'क्या चाहते हो.'

'फौज में भरती कर लीजिए.'

'मरने से तो नहीं डरते?'

'बिलकुल नहीं—राजपूत हूं.'

'बहुत कड़ी मेहनत करनी पड़ेगी.'

'इस का भी डर नहीं.'

'अदन जाना पड़ेगा.'

'खुशी से जाऊंगा.'

कप्तान ने देखा, बला का हाजिरजवाब, मनचला, हिम्मत का धनी जवान है, तुरंत फौज में भरती कर लिया. तीसरे दिन रेजिमेंट अदन को रवाना हुआ. मगर ज्योंज्यों जहाज आगे चलता था, जगत का दिल पीछे रह जाता था. जब तक जमीन का किनारा नजर आता रहा, वह जहाज के डेक पर खड़ा अनुरक्त नेत्रों से उसे देखता रहा.

जब वह भूमि तट जल में विलीन हो गया तो उस ने एक ठंडी सांस ली और मुंह ढांप कर रोने लगा. आज जीवन में पहली बार उसे प्रियजनों की याद आई. वह छोटा सा अपना कस्बा, वह गांजे की दुकान, वह सैरसपाटे, वह सुहृद मित्रों के जमघट आंखों में फिरने लगे. कौन जाने, फिर कभी उन से भेंट होगी या नहीं. एक बार वह इतना बेचैन हुआ कि जी में आया पानी में कूद पड़े.

3

जगतसिंह को अदन में रहते तीन महीने गुजर गए. भांतिभांति की नवीनताओं ने कई दिन तक उसे मुग्ध किए रखा; लेकिन पुराने संस्कार फिर जाग्रत होने लगे. अब कभीकभी उसे स्नेहमयी माता की याद आने लगी, जो पिता के क्रोध, बहनों के धिक्कार और स्वजनों के तिरस्कार में भी उस की रक्षा करती थी.

उसे वह दिन याद आया, जब एक बार वह बीमार पड़ा था. उस के बचने की कोई आशा न थी; पर न तो पिता को उस की कुछ चिंता थी, न बहनों को. केवल माता थी, जो रात की रात उस के सिरहाने बैठी अपनी मधुर, स्नेहमयी बातों से उस की पीड़ा शांत करती रही थी. उन दिनों कितनी बार उस ने उस देवी को नीरव रात्रि में रोते देखा था.

वह स्वयं रोगों से जीर्ण हो रही थी; लेकिन उस की सेवाशुश्रूषा में वह अपनी व्यथा को ऐसी भूल गई थी, मानो उसे कोई कष्ट ही नहीं. क्या उसे माता के दर्शन फिर होंगे? वह इसी क्षोभ और नैराश्य में समुद्र तट पर चला जाता और घंटों अनंत जल प्रवाह को देखा करता.

कई दिनों से उसे घर पर एक पत्र भेजने की इच्छा हो रही थी, किंतु लज्जा और ग्लानि के कारण वह टालता जाता था. आखिर एक दिन उस से न रहा गया. उस ने पत्र लिखा और अपने अपराधों के लिए क्षमा मांगी. पत्र आदि से अंत तक भक्ति से भरा हुआ था.

अंत में उस ने इन शब्दों में अपनी माता को आश्वासन दिया था—माता जी, मैं ने बड़ेबड़े उत्पात किए हैं, आप लोग मुझ से तंग आ गई थी, मैं उन भारी भूलों के लिए सच्चे हृदय से लज्जित हूं और आप को विश्वास दिलाता हूं कि जीता रहा तो कुछ न कुछ कर के दिखाऊंगा. तब कदाचित आप को मुझे अपना पुत्र कहने में संकोच न होगा. मुझे आशीर्वाद दीजिए कि अपनी प्रतिज्ञा का पालन कर सकूं.

यह पत्र लिख कर उस ने डाकखाने में छोड़ा और उसी दिन से उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा; किंतु एक महीना गुजर गया और कोई जवाब न आया. उस का जी घबड़ाने लगा. जवाब क्यों नहीं आया—कहीं माताजी बीमार तो नहीं हैं? शायद दादा ने क्रोध वश जवाब न लिखा होगा? कोई और विपत्ति तो नहीं आ पड़ी?

कैंप में एक वृक्ष के नीचे कुछ सिपाहियों ने शालिग्राम की एक मूर्ति रख छोड़ी थी. कुछ श्रद्धालु सैनिक रोज उस प्रतिमा पर जल चढ़ाया करते थे. जगतसिंह उन की हंसी उड़ाया करता; पर आज वह विक्षिप्तों की भांति प्रतिमा के सम्मुख जा कर बड़ी देर तक मस्तक झुकाए बैठा रहा. वह इसी ध्यानावस्था में बैठा था कि किसी ने उस का नाम ले कर पुकारा, यह दफ्तर का चपरासी था और उस के नाम की चिट्ठी ले कर आया था. जगतसिंह ने पत्र हाथ में लिया, तो उस की सारी देह कांप उठी.

ईश्वर की स्तुति कर के उस ने लिफाफा खोला और पढ़ा. लिखा था—'तुम्हारे दादा को गबन के अभियोग में 5 वर्ष की सजा हो गई. तुम्हारी माता इस शोक में मरणासन्न है. छुट्टी मिले, तो घर चले आओ.'

जगतसिंह ने उसी वक्त कप्तान के पास जा कर कहा—हुजूर, मेरी मां बीमार हैं, मुझे छुट्टी दे दीजिए.

कप्तान ने कठोर आंखों से देख कर कहा—अभी छुट्टी नहीं मिल सकती.

'तो मेरा इस्तीफा ले लीजिए.'

'अभी इस्तीफा नहीं लिया जा सकता.'

'मैं अब एक क्षण भी नहीं रह सकता.'

'रहना पड़ेगा. तुम लोगों को बहुत जल्द लाम पर जाना पड़ेगा.'

‘लड़ाई छिड़ गई! आह, तब मैं घर नहीं जाऊंगा? हम लोग कब तक यहां से जाएंगे?’

‘बहुत जल्द, दो ही चार दिनों में.’

4

चार वर्ष बीत गए. कैप्टन जगतसिंह का सा योद्धा उस रेजीमेंट में नहीं है. कठिन अवस्थाओं में उस का साहस और भी उत्तेजित हो जाता है. जिस मुहिम में सब की हिम्मतें जवाब दे जाती हैं, उसे सर करना उसी का काम है. हल्ले और धावे में वह सदैव सब से आगे रहता है, उस की त्योरियों पर कभी मैल नहीं आता; इस के साथ ही वह इतना विनम्र, इतना गंभीर, इतना प्रसन्नचित्त है कि सारे अफसर और मातहत उस की बड़ाई करने हैं, उस का पुनर्जीवन सा हो गया.

उस पर अफसरों को इतना विश्वास है कि अब वे प्रत्येक विषय में उस से परामर्श करते हैं. जिस से पूछिए, वही वीर जगतसिंह की विरुदावली सुना देगा—कैसे उस ने जरमनों की मेगजीन में आग लगाई, कैसे अपने कप्तान को मशीनगनों की मार से निकाला, कैसे अपने एक मातहत सिपाही को कंधे पर ले कर निकल आया. ऐसा जान पड़ता है, उसे अपने प्राणों का मोह ही नहीं वह काल को खोजता फिरता हो!

लेकिन नित्य रात्रि के समय, जब जगतसिंह को अवकाश मिलता है, वह अपनी छोलदारी में अकेले बैठ कर घरवालों की याद कर लिया करता है—दोचार आंसू की बूंदें अवश्य गिरा देता है. वह प्रति मास अपने वेतन का बड़ा भाग घर भेज देता है, और ऐसा कोई सप्ताह नहीं जाता जब कि वह माता को पत्र न लिखता हो.

सब से बड़ी चिंता उसे अपने पिता की है जो आज उसी के दुष्कर्मों के कारण कारावास की यातना झेल रहे हैं. हाय! वह कौन दिन होगा, जब कि वह उन के चरणों पर सिर रख कर अपना अपराध क्षमा कराएगा, और वह उस के सिर पर हाथ रख कर आशीर्वाद देंगे?

5

सवा चार वर्ष बीत गए. संध्या का समय है. नैनी जेल के द्वार पर भीड़ लगी हुई है. कितने ही कैदियों की मियाद पूरी हो गई है. उन्हें लिवा ले जाने के लिए उन के घरवाले आए हुए हैं; किंतु बूढ़ा भक्तसिंह अपनी अंधेरी कोठरी में सिर झुकाए उदास बैठा हुआ है. उस की कमर झुक कर कमान हो गई है! देह अस्थिपंजर मात्र रह गई है. ऐसा जान पड़ता है, किसी चतुर शिल्पी ने एक अकाल पीड़ित मनुष्य की मूर्ति बना कर रख दी है. उस की भी मियाद पूरी हो गई है; लेकिन उस के घर से कोई नहीं आया. आए कौन? आने वाला था ही कौन?

एक बूढ़े किंतु हृष्टपुष्ट कैदी ने आ कर उस का कंधा हिलाया और बोला—कहो भगत, कोई घर से आया?

भक्तसिंह ने कंपित कंठ स्वर से कहा—घर पर है ही कौन?

‘घर तो चलोगे ही?’

‘मेरा घर कहां है?’

‘तो क्या यहीं पड़े रहोगे?’

‘अगर ये लोग निकाल न देंगे, तो यहीं पड़ा रहूंगा.’

आज चार साल के बाद भक्तसिंह को अपने प्रताड़ित, निर्वासित पुत्र की याद आ रही थी. जिस के कारण जीवन का सर्वनाश हो गया; आबरू मिट गई; घर बरबाद हो गया, उस की स्मृति भी उन्हें असह्य थी; आज नैराश्य और दुख के अथाह सागर में डूबते हुए उन्होंने उसी तिनके का सहारा लिया. न जाने उस बेचारे की क्या दशा हुई. लाख बुरा है, तो भी अपना लड़का है. खानदान की निशानी तो है. मरूंगा तो चार आंसू तो बहाएगा, दो चिल्लू पानी तो देगा.

हाय! मैं ने उस के साथ कभी प्रेम का व्यवहार नहीं किया. जरा भी शरारत करता, तो यमदूत की भांति उस की गरदन पर सवार हो जाता. एक बार रसोई में बिना पैर धोए चले जाने के दंड में मैं ने उसे उलटा लटका दिया था. कितनी बार केवल जोर से बोलने पर मैं ने उसे तमाचे लगाए थे. पुत्र सा रत्न पा कर मैं ने उस का आदर न किया. उसी का दंड है. जहां प्रेम का बंधन शिथिल हो, वहां परिवार की रक्षा कैसे हो सकती है?

6

सबेरा हुआ. आशा का सूर्य निकला. आज उस की रिश्मियां कितनी कोमल और मधुर थीं, वायु कितनी सुखद, आकाश कितना मनोहर, वृक्ष कितने हरेभरे, पक्षियों का कलरव कितना मीठा! सारी प्रकृति आशा के रंग में रंगी हुई; पर भक्तसिंह के लिए चारों ओर घोर अंधेरा था.

जेल का अफसर आया. कैदी एक पंक्ति में खड़े हुए. अफसर एकएक का नाम ले कर रिहाई का परवाना देने लगा. कैदियों के चेहरे आशा से प्रफुल्लित थे. जिस का नाम आता, वह खुशखुश अफसर के पास जाता, परवाना लेता, झुक कर सलाम करता और तब अपने विपत्ति काल के संगियों से गले मिल कर बाहर निकल जाता.

उस के घरवाले दौड़ कर उस से लिपट जाते. कोई पैसे लुटा रहा था, कहीं मिठाइयां बांटी जा रही थीं, कहीं जेल के कर्मचारियों को इनाम दिया जा रहा था. आज नरक के पुतले विनम्रता के देवता बने हुए थे.

अंत में भक्तसिंह का नाम आया. वह सिर झुकाए आहिस्ताआहिस्ता जेलर के पास गए और उदासीन भाव से परवाना ले कर जेल के द्वार की ओर चले, मानो सामने कोई समुद्र लहरें मार रहा है. द्वार के बाहर निकल कर वह जमीन पर बैठ गए. कहां जाएं?

सहसा उन्होंने एक सैनिक अफसर को घोड़े पर सवार, जेल की ओर आते देखा. उस की देह पर खाकी वरदी थी, सिर पर कारचोबी साफा. अजीब शान से घोड़े पर बैठा हुआ. उस के पीछेपीछे एक फिटन आ रही थी. जेल के सिपाहियों ने अफसर को देखते ही बंदूकें संभाली और लाइन में खड़े हो कर सलाम किया.

भक्तसिंह ने मन में कहा—एक भाग्यवान वह है, जिस के लिए फिटन आ रही है; और एक अभागा मैं हूं, जिस का कहीं ठिकाना नहीं.

फौजी अफसर ने इधरउधर देखा और घोड़े से उतर कर सीधे भक्तसिंह के सामने आ कर खड़ा हो गया.

भक्तसिंह ने उसे ध्यान से देखा और तब चौंक कर उठ खड़े हुए और बोले—अरे! बेटा जगतसिंह!

जगतसिंह रोता हुआ उन के पैरों में गिर पड़ा.

लागडाट

जोखू भगत और बेचन चौधरी में तीन पीढ़ियों से अदावत चली आती थी कुछ डांड़मेंड़ का झगड़ा था. उन के परदादों में कई बार खूनखच्चर हुआ. बापों के समय से मुकदमेबाजी शुरू हुई. दोनों कई बार हाईकोर्ट तक गए. लड़कों के समय में संग्राम की भीषणता और भी बढ़ी, यहां तक कि दोनों ही अशक्त हो गए.

पहले दोनों इसी गांव में आधेआधे के हिस्सेदार थे. अब उन के पास उस झगड़ने वाले खेत को छोड़ कर एक अंगुल जमीन न थी. भूमि गई, धन गया, मानमर्यादा गई लेकिन वह विवाद ज्यों का त्यों बना रहा. हाईकोर्ट के धुरंधर नीतिज्ञ एक मामूली सा झगड़ा तय न कर सके.

इन दोनों सज्जनों ने गांव को दो विरोधी दलों में विभक्त कर दिया था. एक दल की भंग बूटी चौधरी के द्वार पर छनती; तो दूसरे दल के चरसगांजे के दम भगत के द्वार पर लगते थे. स्त्रियों और बालकों के भी दो दल हो गए थे. यहां तक कि दोनों सज्जनों के सामाजिक और धार्मिक विचारों में भी विभाजक रेखा खिंची हुई थी.

चौधरी कपड़े पहने सत्तू खा लेते और भगत को ढोंगी कहते. भगत बिना कपड़े उतारे पानी भी न पीते और चौधरी को भ्रष्ट बतलाते. भगत सनातनधर्मी बने तो चौधरी ने आर्यसमाज का आश्रय लिया.

जिस बजाज, पंसारी या कुंजड़े से चौधरी सौदे लेते उस की ओर भगत जी ताकना भी पाप समझते थे. और भगतजी के हलवाई की मिठाइयां, उन के ग्वाले का दूध और तेली का तेल चौधरी के लिए त्याज्य थे. यहां तक कि उन के आरोग्यता के सिद्धांतों में भी भिन्नता थी.

भगत जी वैद्यक के कायल थे, चौधरी यूनानी प्रभा के मानने वाले. दोनों चाहे रोग से मर जाते, पर अपने सिद्धांतों को न तोड़ते.

2

जब देश में राजनैतिक आंदोलन शुरू हुआ तो उस की भनक उस गांव में आ पहुंची. चौधरी ने आंदोलन का पक्ष लिखा, भगत उन के विपक्षी हो गए. एक सज्जन ने आ कर गांव में किसान सभा खोली. चौधरी उस में शरीक हुए, भगत अलग रहे. जागृति और बढ़ी, स्वराज्य की चर्चा होने लगी. चौधरी स्वराज्यवादी हो गए, भगत ने राजभक्ति का पक्ष लिया. चौधरी का घर स्वराज्यवादियों का अड्डा हो गया, भगत का घर राज भक्तों का

क्लब बन गया.

चौधरी जनता में स्वराज्यवाद का प्रचार करने लगे:

“मित्रो, स्वराज्य का अर्थ है अपना राज. अपने देश में अपना राज हो वह अच्छा है कि किसी दूसरे का राज हो वह?”

जनता ने कहा—अपना राज हो, वह अच्छा है.

चौधरी—तो यह स्वराज्य कैसे मिलेगा? आत्मबल से, पुरुषार्थ से, मेल से एक दूसरे से द्वेष करना छोड़ दो. अपने झगड़े आप मिल कर निपटा लो.

एक शंका—आप तो नित्य अदालत में खड़े रहते हैं.

चौधरी—हां, पर आज से अदालत जाऊं तो मुझे गऊहत्या का पाप लगे. तुम्हें चाहिए कि तुम अपनी गाढ़ी कमाई अपने बालबच्चों को खिलाओ, और बचे तो परोपकार में लगाओ, वकील मुखतारों की जेब क्यों भरते हो, थानेदार को घूस क्यों देते हो, अमलों की चिरौरी क्यों करते हो? पहले हमारे लड़के अपने धर्म की शिक्षा पाते थे; वे सदाचारी, त्यागी, पुरुषार्थी बनते थे. अब वे विदेशी मदरसों में पढ़ कर चाकरी करते हैं, घूस खाते हैं, शौक करते हैं, अपने देवताओं और पितरों की निंदा करते हैं, सिगरेट पीते हैं, साल बनाते हैं और हाकिमों की गोड़धरिया करते हैं. क्या यह हमारा कर्त्तव्य नहीं है कि हम अपने बालकों को धर्मानुसार शिक्षा दें?

जनता—चंदा कर के पाठशाला खोलनी चाहिए.

चौधरी—हम पहले मदिरा का छूना पाप समझते थे, अब गांवगांव और गलीगली में मदिरा की दुकानें हैं. हम अपनी गाढ़ी कमाई के करोड़ों रुपए गांजेशराब में उड़ा देते हैं.

जनता—जो दारूभांग पिए उसे डांड लगाना चाहिए!

चौधरी—हमारे दादाबाबा, छोटेबड़े सब गाढ़ा गजी पहनते थे. हमारी दादियांनानियां चरखा काता करती थीं. सब धन देश में रहता था, हमारे जुलाहे भाई चैन की वंशी बजाते थे. अब हम विदेश के बने हुए महीन रंगीन कपड़ों पर जान देते हैं. इस तरह दूसरे देश वाले हमारा धन ढो ले जाते हैं; बेचारे जुलाहे कंगाल हो गए. क्या हमारा यही धर्म है कि अपने भाइयों की थाली छीन कर दूसरों के सामने रख दें?

जनता—गाढ़ा कहीं मिलता ही नहीं.

चौधरी—अपने घर का बना हुआ गाढ़ा पहनो, अदालतों को त्यागो, नशेबाजी छोड़ो, अपने लड़कों को धर्मकर्म सिखाओ, मेल से रहो—बस, यही स्वराज्य है. जो लोग कहते हैं कि स्वराज्य के लिए खून की नदी बहेगी, वे पागल हैं—उन की बातों पर ध्यान मत दो.

जनता ये बातें चाव से सुनती थी. दिनोंदिन श्रोताओं की संख्या बढ़ती जाती थी. चौधरी के सब श्रद्धाभाजन बन गए.

3

भगत जी भी राजभक्ति का उपदेश करने लगे—

“भाइयो, राजा का काम राज करना और प्रजा का काम उस की आज्ञा का पालन करना है. इसी को राजभक्ति कहते हैं. और हमारे धार्मिक ग्रंथों में हमें इसी राजभक्ति की शिक्षा दी गई है. राजा ईश्वर का प्रतिनिधि है, उस की आज्ञा के विरुद्ध चलना महान पातक

है. राजविमुख प्राणी नरक का भागी होता है.

एक शंका—राजा को भी तो अपने धर्म का पालन करना चाहिए?

दूसरी शंका—हमारे राजा तो नाम के हैं, असली राजा तो विलायत के बनिए महाजन हैं.

तीसरी शंका—राजा को भी तो अपने धर्म का पालन करना चाहिए?

भगत—लोग तुम्हें शिक्षा देते हैं कि अदालतों में मत जाओ, पंचायतों में मुकदमे ले जाओ; लेकिन ऐसे पंच कहां हैं, जो सच्चा न्याय करें, दूध का दूध पानी का पानी कर दें! यहां मुंह देखी बातें होंगी. जिन का कुछ दबाव है, उन की जीत होगी, जिन का कुछ दबाव नहीं है, वह बेचारे मारे जाएंगे. अदालतों में सब काररवाई कानून पर होती है, वहां छोटेबड़े सब बराबर हैं, शेर बकरी एक घाट पर पानी पीते हैं.

दूसरी शंका—अदालतों का न्याय कहने ही को है, जिस के पास बने हुए गवाह और दांव पेंच खेले हुए वकील होते हैं, उसी की जीत होती है, झूठेसच्चे की परख कौन करता है? हां, हैरानी अलबत्ता होती है.

भगत—कहा जाता है कि विदेशी चीजों का व्यवहार मत करो. यह गरीबों के साथ घोर अन्याय है. हम को बाजार में जो चीज सस्ती और अच्छी मिले, वह लेनी चाहिए. चाहे स्वदेशी हो या विदेशी. हमारा पैसा सेंत में नहीं आता है कि उसे रद्दीभद्दी चीजों पर फेंकें.

एक शंका—अपने देश में तो रहता है, दूसरों के हाथ में तो नहीं जाता.

दूसरी शंका—अपने घर में अच्छा खाना न मिले तो क्या विजातियों के घर का अच्छा भोजन खाने लगेंगे?

भगत—लोग कहते हैं, लड़कों को सरकारी मदरसों में मत भेजो. सरकारी मदरसे में न पढ़ते तो आज हमारे भाई बड़ीबड़ी नौकरियां कैसे पाते, बड़ेबड़े कारखाने कैसे बना लेते? बिना नई विद्या पढ़े अब संसार में निबाह नहीं हो सकता, पुरानी विद्या पढ़ कर पत्रा देखने और कथा बांचने के सिवाय और क्या आता है? राजकाज क्या पट्टी पोथी बांचने वाले लोग करेंगे?

एक शंका—हमें राजकाज न चाहिए. हम अपनी खेतीबारी ही में मगन हैं, किसी के गुलाम तो नहीं.

दूसरी शंका—जो विद्या घमंडी बना दे, उस से मूर्ख ही अच्छा, यही नई विद्या पढ़ कर तो लोग सूटबूट, घड़ीछड़ी, हैटकोट लगाने लगते हैं और अपने शौक के पीछे देश का धन विदेशियों की जेब में भरते हैं. ये देश के द्रोही हैं.

भगत—गांजाशराब की ओर आजकल लोगों की कड़ी निगाह है. नशा बुरी लत है, इसे सब जानते हैं. सरकार को नशे की दुकानों से करोड़ों रुपए साल की आमदनी होती है. अगर दुकानों में न जाने से लोगों की नशे की लत छूट जाए तो बड़ी अच्छी बात है. वह दुकान पर न जाएगा तो चोरीछिपे किसी न किसी तरह दूने चौगुने दाम दे कर, सजा काटने पर तैयार हो कर, अपनी लत पूरी करेगा. तो ऐसा काम क्यों करो कि सरकार का नुकसान अलग हो, और गरीब रैयत का नुकसान अलग हो. और फिर किसीकिसी को नशा खाने से फायदा होता है. मैं ही एक दिन अफीम न खाऊं तो गांठों में दर्द होने लगे, दम उखड़ जाए

और सर्दी पकड़ ले.

एक आवाज—शराब पीने से बदन में फुर्ती आ जाती है.

एक शंका—सरकार अधर्म से रुपया कमाती है. उसे यह उचित नहीं. अधर्मी के राज में रह कर प्रजा का कल्याण कैसे हो सकता है?

दूसरी शंका—पहले दारू पिला कर पागल बना दिया. लत पड़ी तो पैसे की चाट हुई. इतनी मजूरी किस को मिलती है कि रोटी कपड़ा भी चले और दारूशराब भी उड़े? या तो बालबच्चों को भूखों मारो या चोरी करो, जुआ खेलो और बेईमानी करो. शराब की दुकान क्या है? हमारी गुलामी का अड्डा है.

4

चौधरी के उपदेश सुनने के लिए जनता टूटती थी. लोगों को खड़े होने की जगह न मिलती. दिनोंदिन चौधरी का मान बढ़ने लगा. उन के यहां नित्य पंचायतों की राष्ट्रोन्नति की चर्चा रहती, जनता को इन बातों में बड़ा आनंद और उत्साह होता. उन के राजनैतिक ज्ञान की वृद्धि होती. वह अपना गौरव और महत्त्व समझने लगे, उन्हें अपनी सत्ता का अनुभव होने लगा.

निरंकुशता और अन्याय पर अब उन की तिउरियां चढ़ने लगीं. उन्हें स्वतंत्रता का स्वाद मिला. घर की रुई, घर का सूत, घर का कपड़ा, घर का भोजन, घर की अदालत, न पुलिस का भय, न अमला की खुशामद, सुख और शांति से जीवन व्यतीत करने लगे. कितनों ही ने नशेबाजी छोड़ दी और सद्भावों की एक लहर सी दौड़ने लगी.

लेकिन भगत जी इतने भाग्यशाली न थे. जनता को दिनोंदिन उन के उपदेशों से अरुचि होती जाती थी. यहां तक कि बहुधा उन के श्रोताओं में पटवारी, चौकीदार, मुदर्रिस और इन्हीं कर्मचारियों के मित्रों के अतिरिक्त और कोई न होता था. कभीकभी बड़े हाकिम भी आ निकलते और भगत जी का बड़ा आदरसत्कार करते. जरा देर के लिए भगत जी के आंसू पुंछ जाते, लेकिन क्षण भर का सम्मान आठों पहर के अपमान की बराबरी कैसे करता! जिधर निकल जाते उधर ही उंगलियां उठने लगतीं.

कोई कहता, खुशामदी टट्टू है, कोई कहता, खुफिया पुलिस का भेदी है. भगत जी अपने प्रतिद्वंद्वी की बड़ाई और अपनी लोकनिंदा पर दांत पीसपीस कर रह जाते थे. जीवन में यह पहला ही अवसर था कि उन्हें सब के सामने नीचा देखना पड़ा.

चिरकाल से जिस कुल मर्यादा की रक्षा करते आए थे और जिस पर अपना सर्वस्व अर्पण कर चुके थे, वह धूल में मिल गई. यह दाहमय चिंता उन्हें एक क्षण के लिए चैन न लेने देती. नित्य समस्या सामने रहती कि अपना खोया हुआ सम्मान क्योंकर पाऊं, अपने प्रतिपक्षी को क्योंकर पददलित करूं, कैसे उस का गरूर तोड़ूं?

अंत में उन्होंने सिंह को उसी की मांद में पछाड़ने का निश्चय किया.

5

संध्या का समय था. चौधरी के द्वार पर एक बड़ी सभा हो रही थी. आसपास के गांवों के किसान भी आ गए, हजारों आदमियों की भीड़ थी. चौधरी उन्हें स्वराज्य विषयक

उपदेश दे रहे थे. बारबार भारतमाता की जयजयकार की ध्वनि उठती थी.

एक ओर स्त्रियों का जमाव था. चौधरी ने अपना उपदेश समाप्त किया और अपनी जगह पर बैठे. स्वयं सेवकों ने स्वराज्य फंड के लिए चंदा जमा करना शुरू किया कि इतने में भगत जी न जाने किधर से लपके हुए आए और श्रोताओं के सामने खड़े हो कर उच्च स्वर में बोले:

'भाइयो, मुझे यहां देख कर अचरज मत करो, मैं स्वराज्य विरोधी नहीं हूं. ऐसा पतित कौन प्राणी होगा जो स्वराज्य का निंदक हो; लेकिन इस के प्राप्त करने का वह उपाय नहीं है जो चौधरी ने बताया है और जिस पर तुम लोग लट्टू हो रहे हो.

जब आपस में फूट और रार है, पंचायतों से क्या होगा? जब विलासिता का भूत सिर पर सवार है तो नशा कैसे छूटेगा, मदिरा की दुकानों का बहिष्कार कैसे होगा? सिगरेट, साबुन, मोजे, बनियान, अद्धी, तंजेब से कैसे पिंड छूटेगा? जब रोब और हुकूमत की लालसा बनी हुई है तो सरकारी मदरसे कैसे छोड़ोगे, विधर्मी शिक्षा की बेड़ी से कैसे मुक्त हो सकोगे?

स्वराज्य लेने का केवल एक ही उपाय है और वह आत्मसंयम है. यही महौषधि तुम्हारे समस्त रोगों को समूल नष्ट करेगी. आत्मा को बलवान बनाओ, इंद्रियों को साधो, मन को वश में करो, तुम में भातृभाव पैदा होगा, तभी वैमनस्य मिटेगा, तभी ईर्ष्या और द्वेष का नाश होगा, तभी भोगविलास से मन हटेगा, तभी नशेबाजी का दमन होगा.

आत्मबल के बिना स्वराज्य कभी उपलब्ध न होगा. स्वयंसेवा सब पापों का मूल है, यही तुम्हें अदालतों में ले जाता है, यह तुम्हें विधर्मी शिक्षा का दास बनाए हुए है. इस पिशाच को आत्मबल से मारो और तुम्हारी कामना पूरी हो जाएगी. सब जानते हैं, मैं 40 साल से अफीम का सेवन करता हूं.

आज से मैं अफीम को गऊ का रक्त समझता हूं. चौधरी से मेरी तीन पीढ़ियों की अदावत है. आज से चौधरी मेरे भाई हैं. आज से मुझे या मेरे घर के किसी प्राणी को घर के कते सूत से बुने हुए कपड़े के सिवाय कुछ और पहनते देखो तो मुझे जो दंड चाहो, दो. बस मुझे यही कहना है, परमात्मा हम सब की इच्छा पूरी करे.'

यह कह कर भगत जी घर की ओर चले कि चौधरी दौड़ कर उन के गले से लिपट गए. तीन पुश्तों की अदावत एक क्षण में शांत हो गई.

उस दिन से चौधरी और भगत साथसाथ स्वराज्य का उपदेश करने लगे. उन में गाढ़ी मित्रता हो गई और यह निश्चय करना कठिन था कि दोनों में जनता किस का अधिक सम्मान करती है.

प्रतिद्वंद्विता वह चिनगारी थी जिस ने दोनों पुरुषों के हृदय दीपक को प्रकाशित कर दिया था.